मूल्य: ₹50 | सितम्बर–अक्तूबर 2026 | आई. एस. ओ. 9001: 2015 संगठन

वैज्ञानिक बागवानी की लोकप्रिय पत्रिका

भाकृअनुप ICAR

फल फूल

बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ

लैवेंडर उत्पादन से महकती घाटी

/InAgrisearch | /user/icarindia | officialicarindia | www.icar.org.in | /icarindia

परंपरा से नवाचार तक आत्मनिर्भर बागवानी की नई राह

भारतीय बागवानी केवल कृषि उत्पादन की एक प्रणाली नहीं, बल्कि हमारी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत, जैव विविधता, पारंपरिक ज्ञान और वैज्ञानिक प्रगति का जीवंत संगम है। भारतीय समाज ने सदैव प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए फलदार वृक्षों, औषधीय पौधों और विविध वनस्पतियों का संरक्षण एवं उपयोग किया है।

भारतीय ज्ञान परंपरा में वृक्षों और पौधों को जीवन का अभिन्न अंग माना गया है। हमारे प्राचीन ग्रंथों में पौधों की उपयोगिता, औषधीय गुणों तथा पर्यावरणीय महत्व का विस्तृत उल्लेख भी मिलता है। बागवानी से जुड़े पारंपरिक अनुभवों में स्थानीय जलवायु, मृदा और जैव विविधता के अनुरूप पौधों का चयन, प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण और सतत उत्पादन की भावना निहित रही है।

आज जब विश्व, जलवायु अनुकूल, संसाधन संरक्षण आधारित और टिकाऊ कृषि की दिशा में आगे बढ़ रहा है, तब हमारी यह ज्ञान परंपरा और भी प्रासंगिक हो रही है। इसी समृद्ध ज्ञान परंपरा को आधुनिक विज्ञान और नवाचार से जोड़कर भारत आत्मनिर्भर, टिकाऊ और समृद्ध बागवानी की नई राह पर आगे बढ़ रहा है।

भारत की विविध भौगोलिक एवं कृषि जलवायु परिस्थितियाँ बागवानी संपदा की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध हैं। हिमालयी क्षेत्रों के सेब, अखरोट और अन्य समशीतोष्ण फलों से लेकर दक्षिण भारत के नारियल, मसालों और उष्णकटिबंधीय फलों तक, देश के प्रत्येक क्षेत्र ने भारतीय बागवानी को अपनी विशिष्ट पहचान प्रदान की है।

जम्मू-कश्मीर की सेब एवं अखरोट आधारित बागवानी प्रणाली, हिमाचल प्रदेश का सफल बागवानी मॉडल, उत्तर प्रदेश के आम, महाराष्ट्र के संतरे, बिहार की लीची और अमरूद, राजस्थान एवं गुजरात की शुष्क बागवानी, पूर्वोत्तर भारत के अनन्नास एवं हल्दी तथा केरल की नारियल एवं मसाला आधारित बागवानी, ये सभी भारत की विविधता, समृद्धि और क्षमता को प्रतिबिंबित करते हैं।

आज समय की आवश्यकता है कि इस समृद्ध विरासत को आधुनिक विज्ञान, प्रौद्योगिकी और नवाचार से जोड़ा जाए। भाकृअनुप और इसके संस्थान देश की विभिन्न कृषि-जलवायु परिस्थितियों के अनुरूप उन्नत किस्मों, गुणवत्तापूर्ण रोपण सामग्री, उत्पादन तकनीकों तथा प्रसंस्करण एवं संरक्षण उपायों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं। जर्मप्लाज्म संरक्षण के माध्यम से देसी एवं दुर्लभ पौध प्रजातियों की आनुवंशिक संपदा को सुरक्षित रखा जा रहा है, ताकि वर्तमान के साथ-साथ भावी पीढ़ियों के लिए भी जैव विविधता का संरक्षण सुनिश्चित किया जा सके।

भाकृअनुप का प्रयास है कि वैज्ञानिक उपलब्धियाँ केवल अनुसंधान संस्थानों तक सीमित न रहें, बल्कि किसानों के खेतों तक पहुँचकर उनकी आय में वृद्धि और जीवन स्तर में सुधार का आधार बनें।

आधुनिक उत्पादन तकनीकों, डिजिटल कृषि सेवाओं, जल-संरक्षण आधारित प्रणालियों और जलवायु अनुकूल बागवानी उपायों के माध्यम से किसान गुणवत्तापूर्ण उत्पादन, संसाधनों के दक्ष उपयोग और बेहतर बाजार अवसरों की दिशा में आगे बढ़ रहे हैं। साथ ही, मूल्य संवर्धन, प्रसंस्करण और विपणन से बागवानी उत्पादों की आर्थिक क्षमता को और बढ़ाने के नए अवसर सृजित हो रहे हैं।

आज भारत आत्मनिर्भरता और विकसित राष्ट्र के लक्ष्य की ओर अग्रसर है। इस यात्रा में बागवानी क्षेत्र की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह केवल पोषण सुरक्षा और आर्थिक समृद्धि का आधार नहीं, बल्कि ग्रामीण रोजगार, महिला सशक्तिकरण, उद्यमिता और पर्यावरण संरक्षण का भी प्रभावी माध्यम है।

बागवानी में विविधीकरण और मूल्य संवर्धन ग्रामीण अर्थव्यवस्था को नई गति देने के साथ-साथ किसानों के लिए आय के अतिरिक्त अवसर भी उपलब्ध करवा सकते हैं। हमारा विश्वास है कि भारतीय ज्ञान परंपरा, आधुनिक विज्ञान और किसानों के अनुभवों का समन्वय भारतीय बागवानी को अधिक टिकाऊ, समावेशी, लाभकारी और वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धी बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

भाकृअनुप सतत, समावेशी और किसान-केंद्रित बागवानी विकास के लिए प्रतिबद्ध है। आइए, हम प्रकृति के प्रति सम्मान, विज्ञान के प्रति विश्वास और नवाचार की भावना के साथ मिलकर एक समृद्ध, टिकाऊ और आत्मनिर्भर भारत के निर्माण में योगदान दें।

(मांगी लाल जाट)

सचिव (डेयर) एवं महानिदेशक (भाकृअनुप)

भाकृअनुप
ICAR

फल फूल

वैज्ञानिक बागवानी की लोकप्रिय द्विमासिकी
वर्ष: 47, अंक: 5, सितम्बर-अक्तूबर 2026

संपादन सलाहकार समिति

1. **डॉ. संजय कुमार सिंह** **अध्यक्ष**
उप महानिदेशक (बागवानी विज्ञान)
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
2. **डॉ. अनुराधा अग्रवाल** **सदस्य**
परियोजना निदेशक (कृज्ञाप्रनि)
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
3. **डॉ. राजेश कुमार** **सदस्य**
निदेशक,
भाकृअनुप-भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान,
वाराणसी, उत्तर प्रदेश
4. **डॉ. बृजेश सिंह** **सदस्य**
निदेशक,
भाकृअनुप-केंद्रीय आलू अनुसंधान संस्थान,
शिमला, हिमाचल प्रदेश
5. **डॉ. बिकाश दास** **सदस्य**
निदेशक,
भाकृअनुप-राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केंद्र,
मुशहरी, मुजफ्फरपुर, बिहार
6. **डॉ. विनय भारद्वाज** **सदस्य**
निदेशक,
भाकृअनुप-राष्ट्रीय बीज मसाला अनुसंधान केंद्र,
तबीजी फार्म, ब्यावर रोड, अजमेर, राजस्थान
7. **डॉ. ओम प्रकाश अवस्थी** **सदस्य**
प्रमुख, फल एवं बागवानी प्रौद्योगिकी प्रभाग,
भाकृअनुप-भाकृअनुसं,
पूसा, नई दिल्ली
8. **प्रो. राजेश्वर सिंह चंदेल** **सदस्य**
कुलपति,
डॉ. वाई.एस. परमार बागवानी एवं वानिकी विश्वविद्यालय,
नौणी, सोलन, हिमाचल प्रदेश
9. **डॉ. डी. आर. सिंह** **सदस्य**
कुलपति,
बिहार कृषि विश्वविद्यालय,
सबौर, भागलपुर, बिहार
10. **श्री हिमांशु मिश्रा** **सदस्य**
कृषि पत्रकार
11. **लेफ्टिनेंट कर्नल सुभाष देसवाल (सेवानिवृत्त)** **सदस्य**
प्रगतिशील किसान
12. **डॉ. अंजनी कुमार झा** **सदस्य**
प्रधान वैज्ञानिक (कृज्ञाप्रनि)
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
13. **सुश्री सुनीता अरोड़ा** **सदस्य सचिव**
संपादक, हिंदी संपादकीय एकक (कृज्ञाप्रनि)
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

प्रधान संपादक
डा. अनुराधा अग्रवाल

संपादक
सुनीता अरोड़ा

प्रभारी (उत्पादन एकक)
पुनीत भसीन

प्रभारी (व्यवसाय एकक)

दूरभाष: 011-25843657
E-mail: businessuniticar@gmail.com
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि अनुसंधान भवन, पूसा गेट, नई दिल्ली-12
एक प्रति: रु. 50.00 वार्षिक : रु. 250.00
विशेषांक : रु. 200.00

E-mail : phalphul@gmail.com

विषय सूची

विदेशी फलों से समृद्धि की नई राह – **अनुराधा अग्रवाल**

उपयोगी 4
अर्धशुष्क क्षेत्रों के लिए बेल की उन्नत किस्में
अरविंद कुमार सिंह, जगदीश राणे **और** आनंद साहिल

विकल्प 11
कीवी की व्यावसायिक खेती
अंशु कुमार पाण्डेय, कृष्ण प्रिया ग **और** शिवम कुमार राजपूत

अल्पदोहित 15
पोषण से भरपूर स्वॉर्ड बीन का उत्पादन
महिमा सनोड़िया, धीरेंद्र राजपूत, प्रभांशु मिश्रा **और** प्रकाश सिंगाठिया

प्रणाली 18
प्याज बीज उत्पादन की वैज्ञानिक विधि
कमलेश कुमार यादव, पुष्पा उज्जैनिया, एम आर चौधरी **और** उत्तम शिवरान

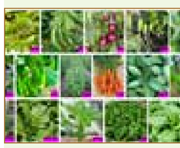
गुणकारी 21
पोषण से समृद्ध पारंपरिक सब्जियां
नीरज कुमार प्रजापति **और** अवनीश चंद्र

अनूठा 24
बहुउपयोगी पारंपरिक फल है खुमानी
दुर्गा प्रसाद भंडारी, इंद्र देव, प्रमोद कुमार शर्मा **और** अरूण नेगी

कमाई 26
कटहल की उन्नत खेती
उपेन्द्र यादव, विवेक कुमार त्रिपाठी **और** स्वरूप मणि

तकनीक 29
पर्वतीय क्षेत्रों में पॉलीहाउस में सब्जी उत्पादन
रीना कुमारी, रमेश कुमार, राजीव कुमार, आँचल चौहान **और** कुमारी शिवानी

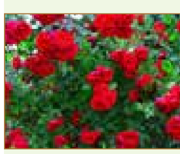
विधि 32
गुलाब की उन्नत बागवानी
रिंकू भास्कर **और** रमेश सिंह

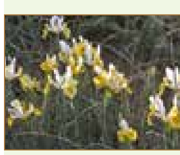
व्यावसायिक 35
सौन्दर्य से भरपूर आइरिस पुष्प का उत्पादन
लोकेन्द्र सिंह, माम चंद सिंह **और** पी.एस. ब्रह्मानन्द

उद्यमिता 38
लैवेंडर उत्पादन से भरपूर संभावनाएँ
बनारसीलाल, हेमा त्रिपाठी, अमरीश वैद्य, ए.एस. चरक **और** भूपेंद्र नाथ त्रिपाठी

विषय सूची

औषधीय 41

मधुमेह उपचार में प्रभावी जिमनेमा

स्वराज्य लक्ष्मी नायक, मनीष कुमार मित्तल **और** मनीष दास

सुरक्षा 43

बागवानी फसलों में ट्रैप द्वारा कीट प्रबंधन

विनीता राजपूत, सुनील कुमार, नरेंद्र कुमार, हरदीप कलकल **और** ओम प्रकाश

उपाय 46

खीरा फसल में कीट एवं रोग प्रबंधन

राज किरण, प्रज्ञा रंजन, भरत राज मीणा **और** भरत गावड़े

सफलता गाथा 49

बागवानी आधारित एकीकृत कृषि प्रणाली से लाभ वृद्धि

नूपुर शर्मा, बी. एल. मीणा, बी. एल. ढाका, जगदीश प्रसाद तेतरवाल और वर्षा गुप्ता

अवसर 51

पुष्पों के प्रसंस्करण से ग्रामीण उद्यमिता को बढ़ावा

अनामिका चौरसिया, अंजना सिसोदिया **और** अनिल कुमार सिंह

जानकारी 55

सितम्बर-अक्तूबर के मुख्य बागवानी कार्य

हरे कृष्ण, अनूप प्रताप सिंह, राघवेंद्र प्रताप सिंह, विनय कुमार पटेल **और** शेखर सिंह

आवरण-II

महानिदेशक के डेस्क से

परंपरा से नवाचार तक - आत्मनिर्भर बागवानी की नई राह

आवरण-III

नवाचार

- **बेकार नहीं, बेशकीमती हैं आम की गुठलियां**
- **पहाड़ी क्षेत्रों में बढ़ रहा चाइनीज स्टेलेरा का संकट**

डिस्क्लेमर

लेखों में व्यक्त विचारों, जानकारियों, आंकड़ों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं। उनसे भाकृअनुप की सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित लेखों तथा अन्य सामग्री का कॉपीराइट अधिकार भाकृअनुप-डीकेएमए के पास सुरक्षित है। इन्हें पुन: प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक की अनुमति अनिवार्य है। रसायनों-कीटनाशकों की डोज संबंधित संस्तुतियों का प्रयोग विशेषज्ञों से परामर्श के बाद करें। समस्त विवादों के लिए न्याय क्षेत्र दिल्ली होगा।

निदेशक की कलम से

विदेशी फलों से समृद्धि की नई राह

भारत की कृषि परंपरा विविध फसलों और स्थानीय फल प्रजातियों से समृद्ध रही है। किंतु बदलती जीवनशैली, बढ़ती आय, स्वास्थ्य के प्रति जागरुकता और बाजार में नई पसंद के कारण विदेशी फलों की मांग तेजी से बढ़ रही है। ड्रैगन फ्रूट, एवोकाडो, कीवी, पैशन फ्रूट, स्ट्रॉबेरी, ब्लूबेरी, रास्पबेरी और विभिन्न विदेशी फलों ने भारतीय बागवानी में अपनी पहचान बनानी शुरू कर दी है। ये विदेशी फल अब देश के अनेक क्षेत्रों में किसानों की आय बढ़ाने का माध्यम बन गये हैं।

भारत की विविध जलवायु विदेशी फलों के उत्पादन के लिए बेहद अनुकूल है। हिमालयी और ठंडे क्षेत्रों में कीवी, स्ट्रॉबेरी तथा अन्य फलों की फसलों की अच्छी संभावनाएं हैं, जबकि उष्ण एवं अर्ध-उष्ण क्षेत्रों में ड्रैगन फ्रूट, पैशन फ्रूट और एवोकाडो जैसी फसलों को अपनाया जा रहा है। महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, गुजरात, पश्चिम बंगाल, हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर, उत्तराखंड और पूर्वोत्तर राज्यों में विभिन्न विदेशी फलों का उत्पादन बढ़ा है।

विदेशी फलों की खेती किसानों के लिए इसलिए भी आकर्षक है, क्योंकि इनके बाजार मूल्य सामान्य फलों की तुलना में अधिक होते हैं। एवोकाडो और कीवी की बढ़ती मांग घरेलू उत्पादन को प्रोत्साहित कर रही है और ड्रैगन फ्रूट ने कई क्षेत्रों में किसानों को पारंपरिक फसलों की बजाय बेहतर आय प्रदान की है। यदि किसान गुणवत्तापूर्ण उत्पादन के साथ ग्रेडिंग, पैकेजिंग और सीधे बाजार तक पहुंच स्थापित करें, तो मूल्यवर्धन की संभावनाएं और बढ़ सकती हैं।

विदेशी फल फसलों की सफलता के लिए वैज्ञानिक जानकारी अत्यंत आवश्यक है। प्रत्येक फल के लिए उपयुक्त तापमान, मृदा और जल प्रबंधन एवं कृषि तकनीक का ध्यान रखना आवश्यक है। प्रमाणित पौध सामग्री का चयन, उपयुक्त किस्म, सही दूरी, प्रशिक्षण एवं छंटाई, सिंचाई, पोषण प्रबंधन और कीट-रोग नियंत्रण पर विशेष ध्यान देना पड़ता है। कई विदेशी फसलों में संरक्षित खेती, ड्रिप सिंचाई, मल्चिंग और नियंत्रित वातावरण जैसी तकनीकें उत्पादन और गुणवत्ता सुधारने में मदद कर सकती हैं।

विदेशी फलों में उत्पादन का सकारात्मक पहलू आयात पर निर्भरता कम करना भी है। भारत में इन फलों की मांग बढ़ने के साथ यदि घरेलू उत्पादन वैज्ञानिक ढंग से बढ़ाया जाए, तो किसानों को नया बाजार मिलेगा और उपभोक्ताओं को भी ताजा उत्पाद उपलब्ध होगें। जैम, जेली, जूस, पल्प, ड्राई फ्रूट, स्क्वैश और अन्य प्रसंस्करित उत्पाद तैयार करके किसानों को अतिरिक्त आय प्राप्त होगी। साथ ही स्थानीय स्तर पर पौधशालाओं, प्रसंस्करण, पैकेजिंग, परिवहन और विपणन से रोजगार के नये अवसर मिलेंगे।

आज विदेशी फल भारतीय बागवानी में केवल आकर्षक उत्पाद नहीं, बल्कि विविधीकरण और उद्यमिता के नये अवसर बन रहे हैं। यदि उत्पादन से लेकर बाजार तक पूरी मूल्य शृंखला मजबूत होती है, तो विदेशी फलों की खेती किसानों की आमदनी बढ़ाने के साथ भारतीय बागवानी को वैश्विक बाजार में नई पहचान दिलवाने में सहायक हो सकती है।

अनुराधा

(अनुराधा अग्रवाल)

अर्धशुष्क क्षेत्रों के लिए बेल की उन्नत किस्में

अरविंद कुमार सिंह, जगदीश राणे और **आनंद साहिल**

बेल एक सांस्कृतिक, धार्मिक एवं पोषणीय दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण देशज फल वृक्ष है, जिसकी खेती प्राचीन काल से भारत सहित दक्षिण एवं दक्षिण-पूर्व एशिया के अनेक देशों में की जाती रही है। भारत में इसे बेल, बिल्व, श्रीफल, मारेडू, बेलो, दिव्य फल एवं बंगाल क्विंस जैसे विभिन्न स्थानीय नामों से जाना जाता है। रूटेसी कुल का यह वृक्ष सुगंधित पुष्पों वाला एवं आकर्षक स्वरूप का होता है, जिसके कारण इसका सजावटी महत्व भी है। बेल शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों के लिए अत्यंत उपयुक्त फल वृक्ष है, क्योंकि इसमें सूखा सहन करने की उत्कृष्ट क्षमता पाई जाती है। हमारे देश में पूर्व समय में बेल के व्यवस्थित बागानों की परंपरा नहीं थी, किंतु वर्तमान में राजस्थान, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, पंजाब एवं गुजरात में उन्नत किस्मों के संगठित बागानों की स्थापना की जा रही है। सामान्यत: बेल के पौधे खेतों की मेड़ों, मंदिर परिसरों तथा गृह उद्यानों में लगाए जाते रहे हैं। प्राकृतिक वनों में भी बेल के बीजजनित पौधे पाए जाते हैं। हाल के वर्षों में देशभर से बेल के श्रेष्ठ जर्मप्लाज्म एवं उत्कृष्ट जननद्रव्यों के संग्रह, मूल्यांकन एवं संरक्षण हेतु विशेष प्रयास किए गए हैं। भाकृअनुप के विभिन्न संस्थानों, क्षेत्रीय केंद्रों एवं राज्य कृषि विश्वविद्यालयों में बेल के जर्मप्लाज्म ब्लॉकों की स्थापना की गई है। राजस्थान, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, पंजाब एवं गुजरात के प्रगतिशील किसानों ने अब बेल की व्यावसायिक खेती को बड़े स्तर पर अपनाना प्रारंभ कर दिया है। वर्तमान में बेल की खेती बागवानी फसल के रूप में तथा खेतों की सीमाओं पर सीमा वृक्षारोपण के रूप में तेजी से लोकप्रिय हो रही है।

बेल एक अत्यंत सूखा एवं ताप सहनशील फल वृक्ष है, जिसमें प्रतिकूल परिस्थितियों के प्रति अद्भुत अनुकूलन क्षमता पाई जाती है। यह उच्च तापमान एवं कम मृदा नमी की स्थिति में ग्रीष्म ऋतु के दौरान पत्तियाँ गिराकर स्वयं को सुरक्षित रखता है। हालाँकि, प्रारंभिक अवस्था के पौधों को 4° से. से कम तापमान एवं तीव्र गर्म एवं शुष्क हवाओं से संरक्षण की आवश्यकता होती है। बेल विभिन्न प्रकार की मृदा जैसे दलदली, क्षारीय, पथरीली, लवणीय, सोडिक एवं रेतीली भूमि में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है तथा यह 5.0 से 10.0 पी.एच. तक की मृदा को सहन कर सकता है। यह फल बंजर एवं अनुर्वर भूमि में भी अच्छी वृद्धि करता है, बशर्ते लवण एवं क्षारीय मृदा का रोपण से पूर्व जिप्सम अथवा पाइराइट द्वारा उपचार किया गया हो। थार मरुस्थल की परिस्थितियों में भी बेल ने अत्यधिक सहनशीलता प्रदर्शित की है, जहाँ रेत में 2-3 माह तक दबे रहने के बाद भी पौधे पुन: जीवित होकर विकसित हो जाते हैं।

बेल लगभग 9 dS/m तक की लवणता को सहन करने की क्षमता रखता है, जिससे यह अर्धशुष्क क्षेत्रों के लिए अत्यंत उपयुक्त फल फसल सिद्ध होती है।

केंद्रीय बागवानी परीक्षण केंद्र (भाकृअनुप-सीआईएएच) गोधरा-वडोदरा राजमार्ग, वेजलपुर-389340, गोधरा, पंचमहल, गुजरात

मूल्यवर्धित उत्पाद

बेल के गूदे से शरबत, जैम, मुरब्बा, स्क्वैश, जेली, टॉफी, पाउडर एवं आइसक्रीम जैसे अनेक मूल्य संवर्धित उत्पाद तैयार किए जाते हैं, जबकि कच्चे फलों का उपयोग संरक्षित उत्पाद एवं सूखे टुकड़ों के रूप में किया जाता है। बेल के फल में पाए जाने वाले जैव सक्रिय यौगिक जैसे एजेलीन, लुपियोल, सिनेओल, साइट्राल, मार्मेलोसिन, ऑराप्टीन एवं स्कोपोलेटिन इसके औषधीय महत्व को बढ़ाते हैं। इन फाइटोकेमिकल्स की मात्रा विभिन्न किस्मों एवं भौगोलिक क्षेत्रों के अनुसार भिन्न होती है, जो बेल की औषधीय एवं पोषण गुणवत्ता को प्रभावित करती है।

बेल की किस्म गोमा यशी

इसके वृक्ष उपोष्णकटिबंधीय जलवायु में सफलतापूर्वक वृद्धि करते हैं तथा अधिक उत्पादन देते हैं, जहाँ ग्रीष्म ऋतु गर्म एवं शीत ऋतु अपेक्षाकृत हल्की होती है। अर्धशुष्क एवं उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में इसकी खेती वर्षा आधारित परिस्थितियों में भी सफलतापूर्वक की जा सकती है। हालाँकि, राजस्थान के पश्चिमी शुष्क क्षेत्रों की परिस्थितियों में शीत ऋतु के दौरान कम तापमान एवं पाले के कारण कलमयुक्त बेल की उन्नत किस्मों तथा युवा पौधों की पत्तियाँ एवं कोमल भाग गंभीर रूप से प्रभावित पाए गए हैं।

अर्धशुष्क क्षेत्रों की वर्षा आधारित परिस्थितियों के लिए उपयुक्त बेल की प्रमुख किस्मों का विवरण इस प्रकार है:

गोमा यशी

यह बेल की एक उन्नत एवं अधिक उत्पादन देने वाली किस्म है, जो अर्धशुष्क क्षेत्रों की परिस्थितियों के लिए अत्यंत उपयुक्त पाई गई है। इसके पौधों से 10वें वर्ष में लगभग 89.45 किलोग्राम प्रति पौधा उत्पादन प्राप्त होता है। फल का औसत भार 1.00-1.62 किलोग्राम, आकार लगभग 13.00 × 12.50 सें.मी. तथा फल परिधि 41-45 सें.मी. होती है। इस किस्म के फलों का छिलका पतला (0.15 सें.मी.) एवं कागजी होता है, जबकि गूदे का प्रतिशत 68.00-72.25% तक पाया जाता है।

फल में रेशा एवं म्यूसीलेज की मात्रा बहुत कम होती है तथा गूदे का रंग आकर्षक एवं सुगंध अत्यंत मनमोहक होती है। इसमें कुल घुलनशील ठोस पदार्थ गूदे में 35-39° ब्रिक्स तथा म्यूसीलेज में 41-43° ब्रिक्स तक पाए जाते हैं, जबकि अम्लता 0.29-0.34% एवं विटामिन-सी की मात्रा 19.00-22.00 मि.ग्रा./100 ग्राम गूदा होती है। यह किस्म मार्च-अप्रैल माह में पककर तैयार होती है तथा शीघ्र पकने वाले समूह की प्रमुख किस्म मानी जाती है। इसके फल शरबत, स्क्वैश, कैंडी एवं मुरब्बा निर्माण के लिए अत्यंत उपयुक्त होते हैं। पौधे का आकार बौना होने के कारण यह उच्च घनत्व रोपण (5×5 मीटर) के लिए भी उपयुक्त किस्म है।

थार दिव्या

यह बेल की एक उन्नत एवं शीघ्र पकने वाली किस्म है, जो गर्म अर्धशुष्क क्षेत्रों की वर्षा आधारित परिस्थितियों में सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है। इस किस्म के फल लगभग 270 दिनों (फरवरी) बाद पककर तैयार हो जाते हैं। घने छत्र (कैनोपी) एवं सघन वृद्धि के कारण इसके फल सन स्कॉल्ड (धूप से झुलसने) से अपेक्षाकृत कम प्रभावित होते हैं। 10वें वर्ष में एक वृक्ष से औसतन 107.50 कि.ग्रा. फल उत्पादन प्राप्त होता है।

फल का औसत भार लगभग 1.62 कि.ग्रा., आकार 18.60 × 14.80 सें.मी. तथा फल परिधि 45.80 सें.मी. होती है। इस किस्म के फलों में गूदे की मात्रा अधिक (लगभग 1.30 कि.ग्रा.) होती है, जबकि छिलका पतला (0.19 सें.मी.) एवं रेशे की मात्रा कम पाई जाती है। गूदे में कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 38.50° ब्रिक्स तथा म्यूसीलेज में 51.00° ब्रिक्स तक पाया जाता है, जबकि अम्लता लगभग 0.30% होती है। यह किस्म फरवरी माह में पककर तैयार होती

औषधीय गुणों से भरपूर

इसके फल अत्यधिक पौष्टिक होते हैं तथा इनमें राइबोफ्लेविन, विटामिन ए, विटामिन सी, कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन एवं आवश्यक खनिज प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। बेल के गूदे में टैनिक अम्ल एवं म्यूसीलेज जैसे तत्व उपस्थित होते हैं, जिनमें गैलेक्टोज, अरेबिनोज एवं रैम्नोज जैसी शर्कराएँ पाई जाती हैं। औषधीय गुणों से भरपूर बेल फल का उपयोग पाचन संबंधी रोगों, स्वास्थ्यवर्धक पेय एवं विभिन्न मूल्य संवर्धित उत्पादों के निर्माण में व्यापक रूप से किया जाता है। यह फल अपने औषधीय गुणों के कारण आयुर्वेद एवं भारतीय पारंपरिक चिकित्सा पद्धतियों में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस पौधे के पत्ते, जड़, छाल, तना, पुष्प एवं फल सभी विभिन्न अवस्थाओं में औषधीय उपयोग में लाए जाते हैं। उपयोग पाचन विकार, मधुमेह, ज्वर, सूजन एवं संक्रमण जैसी समस्याओं के उपचार में किया जाता है तथा इसमें कसैला, अतिसाररोधी, ज्वरनाशक एवं जीवाणुरोधी गुण पाए जाते हैं। वैज्ञानिक अध्ययनों में बेल में एंटीफंगल, एंटीवायरल, कैंसररोधी, पीड़ानाशक एवं रेडियोप्रोटेक्टिव प्रभावों की पुष्टि की गई है। लोक चिकित्सा में इसके विभिन्न अर्कों का उपयोग हृदय रोग, मूत्र विकार, अस्थमा, उदासी एवं शरीर में सूजन जैसी समस्याओं के उपचार में किया जाता है।

है तथा अत्यंत शीघ्र पकने वाले समूह की प्रमुख किस्म मानी जाती है, जो वर्षा आधारित अर्धशुष्क क्षेत्रों के लिए अत्यंत उपयुक्त है।

थार सृष्टि

यह बेल की एक उन्नत किस्म है, जिसे वर्ष 2012 में गुजरात के सोमनाथ मंदिर स्थित बेल बाग से संकलित किया गया था। इस किस्म में 10वें वर्ष में प्रति पौधा औसतन 98.25 किलोग्राम उत्पादन प्राप्त होता है। फल का औसत भार 1.25-1.50 किलोग्राम, आकार लगभग 21.20 × 13.40 सें.मी. तथा फल परिधि 43.78 सें.मी. होती है। इसके फलों का छिलका पतला (0.21 सें.मी.) एवं चमकदार रंग वाला होता है, जिससे इसकी बाजार आकर्षण क्षमता अधिक होती है। फल में कुल बीजों की संख्या लगभग 104 तथा गूदे में रेशा कम मात्रा में पाया जाता है।

गूदे में कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 39.15° ब्रिक्स तथा म्यूसीलेज में 50.50° ब्रिक्स तक पाया जाता है, जबकि अम्लता 0.37% एवं विटामिन-सी की मात्रा 20.80 मि.ग्रा./100 ग्राम गूदा होती है। इस किस्म के फल मध्यम अवधि में पकते हैं तथा मई के प्रथम सप्ताह में तुड़ाई के लिए तैयार हो जाते हैं। फल उत्तम स्वाद, आकर्षक सुगंध एवं उत्कृष्ट गुणवत्ता वाले होते हैं तथा अचार, शरबत, कैंडी, जैम एवं पाउडर निर्माण हेतु अत्यंत उपयुक्त माने जाते हैं।

उन्नत किस्म थार सृष्टि

थार शिवांगी

यह बेल की एक आशाजनक उन्नत किस्म है, जिसे वर्ष 2011 में विद्यानगर क्षेत्र से बागवानी गुणों के आधार पर चयनित किया गया था। इस किस्म में 10वें वर्ष में प्रति पौधा औसतन 97.20 किलोग्राम उत्पादन प्राप्त होता है। फल का औसत भार 0.90-1.20 किलोग्राम, आकार 15.50 × 11.40 सें.मी. तथा फल परिधि 42.20 सें.मी. होती है। इसके फलों का छिलका लगभग 0.20 सें.मी. मोटा होता है तथा गूदे में रेशे की मात्रा कम पाई जाती है।

गूदे में कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 37.13° ब्रिक्स तथा म्यूसीलेज में 48.75° ब्रिक्स तक पाया जाता है, जबकि अम्लता 0.34% एवं विटामिन-सी की मात्रा 20.80 मि.ग्रा./100 ग्राम गूदा होती है। इस किस्म की वृक्ष वृद्धि झुकी हुई प्रकृति की होती है तथा यह देर से पकने वाली किस्म है, जिसके फल मई माह के दूसरे सप्ताह में तैयार होते हैं। इसमें एंटीऑक्सीडेंट गतिविधि अधिक पाई जाती है। फल आकर्षक सुगंध एवं उत्तम स्वाद वाले होते हैं तथा कैंडी, मुरब्बा एवं पाउडर निर्माण के लिए अत्यंत उपयुक्त माने जाते हैं।

थार प्रकृति

यह बेल की एक उन्नत एवं अधिक उत्पादन देने वाली किस्म है, जो अर्धशुष्क क्षेत्रों के लिए उपयुक्त पाई गई है। इस किस्म में 10वें वर्ष में प्रति पौधा औसतन 101.75 किलोग्राम उत्पादन प्राप्त होता है। फल का औसत भार लगभग 1.48 किलोग्राम, आकार 14.10 × 15.20 सें.मी. तथा फल परिधि 44.21 सें.मी. होती है। इसके फलों का छिलका अत्यंत पतला (0.14 सें.मी.) होता है तथा गूदे में रेशे की मात्रा कम (25.60 ग्राम) पाई जाती है। फल में कुल घुलनशील ठोस पदार्थ गूदे में 38.13° ब्रिक्स एवं म्यूसीलेज में 49.80° ब्रिक्स तक पाया जाता है, जबकि अम्लता 0.29% एवं विटामिन-सी की मात्रा 22.83 मि.ग्रा./100 ग्राम गूदा होती है। यह किस्म मध्यम अवधि में पकती है तथा अप्रैल माह के चौथे सप्ताह में तुड़ाई हेतु तैयार हो जाती है। इस किस्म के फल आकर्षक रंग, उत्तम स्वाद एवं मनमोहक सुगंध वाले होते हैं तथा इनमें एंटीऑक्सीडेंट गतिविधि अधिक पाई जाती है। 'थार प्रकृति' शरबत, मुरब्बा एवं पाउडर निर्माण के लिए अत्यंत उपयुक्त किस्म मानी जाती है। इसका छिलका गोमा यशी से भी पतला होता है।

थार गौरी

यह बेल की एक अधिक उत्पादन देने वाली उन्नत किस्म है, जो सघन छत्रक एवं गुच्छों में फलन की विशेषता रखती है। इस किस्म में 10वें वर्ष में प्रति पौधा औसतन 116.70 किलोग्राम उत्पादन प्राप्त होता है। फल का औसत भार 1.37-1.45 किलोग्राम, आकार 14.31 × 13.33 सें.मी. तथा फल परिधि लगभग 41.73 सें.मी. होती है। इसके फलों का छिलका 0.23-0.24 सें.मी. मोटा होता है तथा फल गहरे पीले रंग के आकर्षक दिखाई देते हैं।

फल में कुल घुलनशील ठोस पदार्थ गूदे में 42.50° ब्रिक्स एवं म्यूसीलेज में 47.50° ब्रिक्स तक पाया जाता है, जबकि अम्लता

0.38% एवं विटामिन-सी की मात्रा 23.07 मि.ग्रा./100 ग्राम गूदा होती है। इस किस्म के फलों में बीजों की संख्या अपेक्षाकृत कम तथा स्वाद एवं गुणवत्ता उत्तम पाई जाती है। यह मध्यम अवधि में पकने वाली किस्म है तथा इसके फल अप्रैल माह के चौथे सप्ताह में तुड़ाई हेतु तैयार हो जाते हैं। 'थार गौरी' के फलों की भंडारण क्षमता उत्कृष्ट (15-20 दिन) होती है तथा यह अचार, कैंडी एवं पाउडर निर्माण के लिए अत्यंत उपयुक्त किस्म मानी जाती है।

पौध प्रवर्धन

परंपरागत रूप से बेल का प्रवर्धन बीजों द्वारा किया जाता रहा है। किन्तु बीजजनित पौधों में मातृ गुणों की समानता नहीं पाई जाती, जिसके कारण उनसे प्राप्त पौधे शुद्ध किस्म के नहीं होते। इस कारण बीजों का उपयोग मुख्यत: रूटस्टॉक तैयार करने के लिए किया जाता है। वास्तविक एवं गुणवत्तायुक्त किस्मीय पौध प्राप्त करने हेतु वानस्पतिक प्रवर्धन विधियाँ अधिक उपयुक्त मानी जाती हैं। बेल में प्रमुख वानस्पतिक प्रवर्धन विधियों में बडिंग (कलिकायन) एवं ग्राफ्टिंग (कलम बाँधना) का विशेष महत्व है। इनमें पैच बडिंग तथा सॉफ्टवुड ग्राफ्टिंग सबसे अधिक सफल एवं व्यावसायिक रूप से प्रचलित तकनीकें हैं।

आकर्षक किस्म थार शिवांगी

इन विधियों द्वारा तैयार पौधे शीघ्र फलन में आते हैं तथा मातृ पौधे के गुणों को सुरक्षित बनाए रखते हैं।

रोपण एवं पौध व्यवस्था

बेल के पौधों के रोपण हेतु 1 × 1 × 1 मीटर आकार के गड्ढे तैयार कर उनमें 20-25 किलोग्राम सड़ी हुई गोबर खाद मिलाई जाती है। दीमक नियंत्रण हेतु क्लोरोपायरीफॉस घोल का प्रयोग लाभकारी होता है। वर्षा आधारित क्षेत्रों में रोपण का उपयुक्त समय मानसून की प्रथम वर्षा के बाद जून माह है। पौधों की दूरी किस्म एवं जलवायु के अनुसार 5 × 5 मीटर से 8 × 8 मीटर रखी जाती है।

बौनी किस्म 'गोमा यशी' के लिए 5 × 5 मीटर, 'थार गौरी' के लिए 7 × 7 मीटर तथा 'थार दिव्या' एवं 'थार नीलकंठ' के लिए 8 × 8 मीटर, थार प्रकृति, थार भव्या तथा थार शिवांगी के लिए 6×6 मी. दूरी उपयुक्त मानी जाती है।

सामान्यत: बेल की बागवानी वर्गाकार पद्धति से की जाती है तथा सीमांत क्षेत्रों में इसे वायुरोधी पट्टी के रूप में भी लगाया जाता है।

कटाई एवं छंटाई

बेल में प्रशिक्षण एवं छंटाई पौधों की संतुलित छत्र संरचना विकसित करने हेतु आवश्यक तकनीक है, विशेषकर उच्च घनत्व रोपण में। पौधों में भूमि सतह से लगभग 0.6 मीटर तक शाखाएँ नहीं रखनी चाहिए तथा 4-6 मुख्य शाखाओं का संतुलित विकास करना चाहिए।

रूटस्टॉक से निकलने वाले सकर्स को समय-समय पर हटाना आवश्यक होता है। सामान्यत: फलन के बाद अधिक छंटाई की आवश्यकता नहीं होती, किन्तु सूखी, रोगग्रस्त, कमजोर एवं आपस में क्रॉस होती शाखाओं को हटाते रहना चाहिए।

थार भव्या

यह बेल का एक आशाजनक एवं अधिक उत्पादन देने वाला जीनोटाइप है, जो वर्षा आधारित अर्धशुष्क क्षेत्रों के लिए अत्यंत उपयुक्त पाया गया है। इस किस्म में 10वें वर्ष में प्रति पौधा औसतन 97.18 किलोग्राम उत्पादन प्राप्त होता है। फल का औसत भार 0.65-0.78 किलोग्राम, आकार 11.15 × 10.24 सें.मी. तथा फल परिधि 37.43-39.25 सें.मी. होती है। इसके फलों का छिलका पतला (0.16-0.18 सें.मी.) होता है तथा फल गहरे पीले रंग के आकर्षक दिखाई देते हैं। गूदे में कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 32.47-34.15° ब्रिक्स तथा म्यूसीलेज में 49.50° ब्रिक्स तक पाया जाता है, जबकि अम्लता 0.33% एवं विटामिन-सी की मात्रा 21.63 मि.ग्रा./100 ग्राम गूदा होती है। इस किस्म के पौधे छोटे कद, सघन छत्र एवं फैलावदार वृद्धि वाले होते हैं तथा इनमें घनी पत्तियाँ पाई जाती हैं। यह मध्यम अवधि में पकने वाली किस्म है तथा इसके फल अप्रैल माह के चौथे सप्ताह में तुड़ाई के लिए तैयार हो जाते हैं। 'थार भव्या' के फल छोटे आकार के होने के कारण छोटे परिवारों के लिए उपयुक्त माने जाते हैं तथा शरबत एवं स्लाइस निर्माण हेतु अत्यंत उपयोगी हैं। साथ ही इसके फलों की भंडारण क्षमता 10-15 दिनों तक अच्छी रहती है।

पर्णहीन अवस्था में वार्षिक वृद्धि का लगभग 25% भाग काटने से नई शाखाओं का विकास बढ़ता है तथा घनी छत्र संरचना बनने से फल धूप झुलसा (सन स्कॉल्ड) से सुरक्षित रहते हैं तथा इसके पौधों की कैनोपी इच्छानुसार कम या ज्यादा कटाई एवं छंटाई की जा सकती है।

समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन

समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन का मुख्य उद्देश्य पौधों की पोषण आवश्यकता के अनुसार जैविक एवं रासायनिक उर्वरकों का संतुलित एवं पर्यावरण अनुकूल उपयोग करना है। बेल में उर्वरकों का प्रयोग सक्रिय जड़ क्षेत्र में करना अधिक लाभकारी होता है। ड्रिप सिंचाई के साथ फर्टिगेशन तकनीक अपनाने से जल एवं पोषक तत्वों की उपयोग दक्षता बढ़ती है।

प्रारंभिक अवस्था में प्रति पौधा 20 किलोग्राम गोबर की सड़ी खाद देना लाभकारी होता है, जबकि फलधारण अवस्था में 50-80 किलोग्राम गोबर की सड़ी हुई खाद प्रति वृक्ष प्रतिवर्ष देने की सिफारिश की जाती है। एक वर्षीय पौधों के लिए 10 किलोग्राम गोबर की सड़ी हुई खाद के साथ 50 ग्राम नाइट्रोजन, 25 ग्राम फॉस्फोरस एवं 50 ग्राम पोटाश देना उपयुक्त माना जाता है, जिसे पौधे की आयु के अनुसार प्रतिवर्ष बढ़ाना चाहिए। सीमांत एवं अनुर्वर भूमि में हरी खाद का उपयोग मृदा उर्वरता एवं कार्बनिक पदार्थ बढ़ाने में सहायक होता है।

सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी को दूर करने हेतु जिंक सल्फेट, बोरेक्स एवं फेरस सल्फेट का पर्णीय छिड़काव लाभकारी पाया गया है। जैविक खाद, संतुलित उर्वरक उपयोग, फर्टिगेशन एवं पर्णीय पोषण को सम्मिलित करने वाली आईएनएम तकनीक बेल की वृद्धि, उत्पादन एवं बाग की दीर्घकालिक स्थिरता के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

थार गौरी

मल्चिंग एवं खरपतवार प्रबंधन

बेल की सफल खेती में मल्चिंग एवं खरपतवार प्रबंधन का विशेष महत्व है। धान का पुआल, मक्का अवशेष एवं चावल की भूसी जैसे जैविक मल्च मृदा में नमी संरक्षण, तापमान संतुलन, खरपतवार नियंत्रण तथा मृदा उर्वरता सुधारने में सहायक होते हैं। वर्षा आधारित परिस्थितियों में वृक्ष थालों में लगभग 20 सें.मी. मोटी जैविक मल्च बिछाने से वर्षा जल का बेहतर संचयन होता है तथा वाष्पीकरण से होने वाली नमी हानि कम होती है।

जैविक मल्च के दीर्घकालिक उपयोग से मृदा के पी.एच., ई.सी., सूक्ष्मजीव एवं केंचुआ संख्या में सुधार देखा गया है। खरपतवार नियंत्रण हेतु वर्ष में 2-3 बार गुड़ाई, निराई एवं जुताई करना लाभकारी होता है, विशेषकर काली कपासीय मृदा में जहाँ ग्रीष्मकाल में दरारें बनने से नमी हानि अधिक होती है।

वर्षा ऋतु में अंतरवर्ती फसलों के रूप में सब्जियों की खेती करने से अतिरिक्त आय के साथ खरपतवार नियंत्रण में भी सहायता मिलती है। मल्चिंग, अंतरवर्ती फसलें एवं नियमित अंतर सस्य क्रियाएँ अपनाने से बेल बागों की उत्पादकता, मृदा स्वास्थ्य एवं जल संरक्षण में काफी सुधार होता है।

सिंचाई प्रबंधन

बेल एक अत्यंत सूखा सहनशील फल फसल है, जो वर्षा आधारित अर्धशुष्क क्षेत्रों में सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है। हालाँकि, प्रारंभिक अवस्था में पौधों की बेहतर वृद्धि एवं स्थापना हेतु गर्मियों में 8-10 सिंचाइयाँ लाभकारी होती हैं। फलधारण अवस्था में फल विकास एवं पकने के समय 4-5 आवश्यक सिंचाइयाँ देने से फल का आकार एवं गुणवत्ता बेहतर होती है। फल विकास के दौरान अत्यधिक या अनियमित सिंचाई से फल फटने की समस्या हो सकती है, इसलिए संतुलित सिंचाई आवश्यक है। वर्षा जल संचयन एवं मल्चिंग तकनीक अपनाने से मृदा में नमी संरक्षण, खरपतवार नियंत्रण तथा पौधों की वृद्धि में सहायता मिलती है। ड्रिप सिंचाई एवं फर्टिगेशन प्रणाली जल एवं पोषक तत्वों के कुशल प्रबंधन के लिए अत्यंत उपयोगी मानी जाती है। यद्यपि बेल बिना सिंचाई के भी वर्षा आधारित परिस्थितियों में उगाई जा सकती है, फिर भी सिंचाई से वृद्धि, फलन एवं उत्पादन में उल्लेखनीय सुधार होता है।

बेल आधारित फसल प्रणाली

बेल के बागानों में खाली स्थान में उपयुक्त अंतरवर्ती फसलें उगाई जा सकती हैं। ग्वार, भिंडी, लौकी जैसी दलहनी एवं कम अवधि वाली सब्जी फसलें बेल के साथ सफलतापूर्वक उगाई जाती हैं। अर्धशुष्क क्षेत्रों में खरीफ मौसम में अंतरवर्तीय खेती अधिक उपयुक्त रहती है, जबकि सिंचित क्षेत्रों में रबी मौसम में भी सब्जियाँ उगाई जा सकती हैं। लोबिया एवं मोठ जैसी आवरण फसलें मृदा की जलधारण क्षमता और जैविक कार्बन बढ़ाने में सहायक होती हैं।

बेल के नए बागानों में 5 वर्ष तक अंतरवर्तीय खेती का पेड़ों की वृद्धि पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पाया गया। बेल + ग्वार, बेल + लौकी तथा बेल + भिंडी प्रणाली वर्षा आधारित अर्धशुष्क क्षेत्रों में अतिरिक्त आय के लिए लाभकारी पाई गई। शुष्क क्षेत्रों में बेल + आँवला + करौंदा + सहजन तथा बेल + चिरौंजी + अंजीर + सीताफल जैसे फसल मॉडल उत्पादकता एवं आय बढ़ाने में उपयोगी हैं।

गोधरा, गुजरात में वर्षा के बाद बेल के पेड़ों के थाले में ढैंचा एवं मूंग की हरी खाद बोकर सितंबर में मृदा में मिलाने से मृदा की उर्वरता एवं पेड़ों की वृद्धि में सुधार पाया गया।

परिपक्वता सूचकांक एवं तुड़ाई

बेल के फल सामान्यत: 9-11 माह तक पेड़ पर लगे रहते हैं तथा यह क्लाइमेक्टेरिक प्रकृति का फल है। फल की परिपक्वता का निर्धारण छिलके एवं गूदे के रंग परिवर्तन, कुल घुलनशील ठोस पदार्थ में वृद्धि तथा विशेष सुगंध के आधार पर किया जाता है। पूर्ण परिपक्वता की पहचान फल पर हल्का दबाव देने पर डंठल के आसानी से अलग होने से की जाती है। फल तुड़ाई के समय सावधानी आवश्यक है क्योंकि बेल का छिलका भंगुर होता है और चोट लगने पर फल में दरार आ सकती है, जिससे भंडारण करने पर हानि होती है। फल को 2-3 सें.मी. डंठल सहित तोड़ा जाता है। पेड़ हिलाकर तुड़ाई नहीं करनी चाहिए, इसके लिए फल तोड़क का उपयोग उपयुक्त रहता है। मुरब्बा बनाने हेतु फलों की तुड़ाई नवंबर-दिसंबर में तथा ताजे उपयोग एवं शरबत के लिए फरवरी के दूसरे पखवाड़े से मई तक की जाती है। तुड़ाई का समय तापमान एवं मृदा में नमी की उपलब्धता से प्रभावित होता है।

थार नीलकंठ

यह किस्म, शीघ्र फलन, सघन वृद्धि, मध्यम ऊँचाई, कम काँटों तथा उत्तम गुणवत्ता वाले फलों के लिए प्रसिद्ध है। इस किस्म में कलम लगाने के तीसरे वर्ष से ही पुष्पण एवं फलन प्रारंभ हो जाता है। 10वें वर्ष में प्रति पौधा औसतन 100.67 किलोग्राम उत्पादन प्राप्त होता है। फल का औसत भार लगभग 1.45 किलोग्राम, आकार 15.10 × 15.00 सें.मी. तथा फल परिधि 47.30 सें.मी. होती है। इस किस्म के फलों का छिलका पतला (0.18 सें.मी.) होता है तथा गूदे की मात्रा लगभग 71.30% पाई जाती है। फल में कुल घुलनशील ठोस पदार्थ गूदे में 40.10°ब्रिक्स एवं म्यूसीलेज में 51.50° ब्रिक्स तक पाया जाता है, जबकि अम्लता 0.30% एवं विटामिन-सी की मात्रा 19.90 मि.ग्रा./100 ग्राम गूदा होती है। फल आकर्षक गूदे के रंग, मनमोहक सुगंध एवं उत्तम स्वाद वाले होते हैं, जिससे इनकी बाजार मांग अधिक रहती है। यह किस्म सूखा प्रभावित वर्षा आधारित क्षेत्रों के लिए अत्यंत उपयुक्त है तथा शरबत, स्क्वैश, कैंडी एवं पाउडर निर्माण हेतु विशेष रूप से उपयोगी मानी जाती है।

फल वृद्धि एवं विकास

बेल फल की वृद्धि सामान्यत: एकल सिग्मॉइड वृद्धि स्वरूप का पालन करती है। 'गोमा यशी' किस्म में फल विकास तीन चरणों में होता है: प्रारंभिक धीमी वृद्धि, तीव्र वृद्धि तथा परिपक्वता तक स्थिर वृद्धि। फल का आकार अक्टूबर मध्य तक अधिकतम हो जाता है, इसके बाद वृद्धि बहुत कम होती है।

फल विकास के दौरान विशिष्ट गुरुत्व, शर्करा तथा कठोरता में वृद्धि होती है, जबकि अम्लता, नमी एवं कुल फिनॉलिक तत्वों में कमी आती है। प्रारंभिक अवस्था में श्वसन दर अधिक रहती है, जो विकास के साथ घटती है, लेकिन तुड़ाई के बाद पुन: बढ़ जाती है। इस प्रकार बेल को क्लाइमेक्टेरिक फल माना जाता है।

शारीरिक विकार

फल फुटाव: बेल में फल फटना एक प्रमुख शारीरिक विकार है, जो मुख्यत: दिसंबर-जनवरी तथा मार्च-अप्रैल में देखा जाता है। अधिक तापमान, गर्म हवाएँ एवं मृदा में नमी की कमी इसके मुख्य कारण हैं। ग्रीष्मकाल में होने वाला फल फटना अधिक गंभीर होता है। उचित सिंचाई, जैविक मल्चिंग एवं विंडब्रेक लगाने से इस समस्या को कम किया जा सकता है। अर्धशुष्क क्षेत्रों मे फल फटने की समस्या बहुत कम पायी जाती है।

सन स्कॉल्ड : अत्यधिक धूप एवं मृदा में नमी की कमी के कारण फल की सतह भूरे रंग की हो जाती है, जिसे सन स्कॉल्ड कहते हैं। गंभीर स्थिति में गूदे को भी नुकसान हो सकता है। पतले छिलके वाली किस्में अधिक

प्रभावित होती हैं। मल्चिंग, उचित कैनोपी प्रबंधन तथा फलों को ढकने से इस समस्या को कम किया जा सकता है।

उपज

बेल के पेड़ों में फल पकने के समय प्राकृतिक रूप से पत्तियाँ झड़ जाती हैं, जिससे फल सीधे सूर्य के संपर्क में आ जाते हैं। फल उत्पादन किस्म, पेड़ की आयु, मृदा एवं जलवायु पर निर्भर करता है। सामान्यत: 9-11 वर्ष पुराने पेड़ से 80-150 फल प्राप्त होते हैं। गुजरात की वर्षा आधारित परिस्थितियों में 10 वर्ष या अधिक आयु के पेड़ों से लगभग 80-120 कि.ग्रा. फल प्रति वर्ष प्राप्त होता है। बड़े आकार के फलों वाले पेड़ों में फल संख्या कम होती है, जबकि बीजू पेड़ों (20-30 वर्ष) में छोटे आकार के 500-800 फल प्रति पेड़ तक प्राप्त हो सकते हैं।

कटाई उपरांत प्रबंधन एवं भंडारण: बेल की 'गोमा यशी' किस्म के परिपक्व फलों को रेफ्रिजरेटेड तापमान (4-5° से.) तथा सामान्य तापमान पर पॉलीथीन पैकिंग एवं बिना पैकिंग के भंडारित किया गया। भंडारण के दौरान वजन हानि, कुल घुलनशील ठोस पदार्थ, अम्लता एवं कुल शर्करा का अध्ययन किया गया।

परिणामों से ज्ञात हुआ कि पॉलीथीन पैकिंग में कुल शर्करा की मात्रा धीरे-धीरे बढ़ी, विशेषकर सामान्य तापमान पर। सभी परिस्थितियों में अम्लता लगातार कम होती गई। 21 दिनों के बाद कुल घुलनशील ठोस पदार्थ में कमी शुरू हुई, जबकि कुल शर्करा 28 दिनों तक बढ़ती रही, लेकिन सामान्य तापमान पर बिना पैकिंग वाले फलों में शर्करा की मात्रा घट गई।

फल झड़ना

बेल में फल झड़ना प्राकृतिक प्रक्रिया है, लेकिन अधिक झड़ाव से उत्पादन प्रभावित होता है। मार्बल एवं क्रिकेट बॉल अवस्था में फल गिरना सामान्य है। संतुलित पोषण, जैविक मल्च, उचित नमी तथा एनएए (15-20 पीपीएम) के छिड़काव से फल झड़ाव कम होता है और फल धारण क्षमता बढ़ती है।

फल में झुलसने की समस्या

ग्रेडिंग एवं पैकेजिंग: बेल फलों की उचित ग्रेडिंग एवं पैकेजिंग भंडारण हानि कम करने और बाजार मूल्य बढ़ाने के लिए आवश्यक है। स्वस्थ फलों को आकार एवं आकारिकी के आधार पर ग्रेड किया जाता है, जबकि क्षतिग्रस्त फलों को अलग कर दिया जाता है। वर्तमान में बेल फलों के लिए कोई मानकीकृत पैकेजिंग प्रणाली उपलब्ध नहीं है। सामान्यत: फलों को जूट की बोरियों, बाँस की टोकरियों या लकड़ी के बक्सों में पैक किया जाता है। परिवहन एवं भंडारण के दौरान फलों को टूट-फूट एवं फफूंद संक्रमण से बचाने हेतु भूसा, बुरादा, अखबार आदि कुशन सामग्री का उपयोग लाभकारी होता है।

कटाई उपरांत उत्पाद: बेल का फल कठोर छिलके, अधिक बीज एवं रेशेदार गूदे के कारण सामान्यत: ताजे फल के रूप में कम खाया जाता है, लेकिन इसके औषधीय गुणों के कारण इसकी लोकप्रियता बढ़ रही है।

उत्तर भारत में गर्मियों के दौरान बेल का शरबत अत्यंत लोकप्रिय एवं स्वास्थ्यवर्धक पेय है। कच्चे हरे फलों से मुख्यत: मुरब्बा तैयार किया जाता है, जबकि पके फलों से शरबत, स्क्वैश, जैम, टॉफी, पाउडर, फ्रूट स्लैब आदि मूल्य संवर्धित उत्पाद बनाए जाते हैं। बेल के गूदे को दूध, चीनी एवं इमली के साथ मिलाकर भी पौष्टिक पेय तैयार किया जाता है।

बेल अर्धशुष्क क्षेत्रों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण, बहुउपयोगी एवं जलवायु सहनशील फल वृक्ष है, जिसमें पोषणीय, औषधीय, सांस्कृतिक एवं आर्थिक दृष्टि से अपार संभावनाएँ निहित हैं। इसकी उत्कृष्ट सूखा एवं लवणता सहनशीलता, कम देखभाल में सफल उत्पादन क्षमता तथा अनुर्वर भूमि में भी वृद्धि करने की विशेषता इसे जलवायु परिवर्तन की परिस्थितियों में एक आदर्श फल फसल बनाती है।

उन्नत किस्में, वैज्ञानिक पौध प्रवर्धन, समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन, मल्चिंग, जल संरक्षण एवं अंतरवर्ती फसल प्रणाली जैसी आधुनिक तकनीकों के उपयोग से बेल उत्पादन एवं गुणवत्ता में उल्लेखनीय वृद्धि की जा सकती है। साथ ही, बेल आधारित मूल्य संवर्धित उत्पाद जैसे शरबत, मुरब्बा, स्क्वैश, कैंडी एवं पाउडर किसानों की आय बढ़ाने एवं ग्रामीण उद्यमिता को प्रोत्साहित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

औषधीय गुणों एवं स्वास्थ्यवर्धक उत्पादों के कारण बेल की मांग निरंतर बढ़ रही है। इसलिए वर्षा आधारित क्षेत्रों में बेल की व्यावसायिक खेती को बढ़ावा देकर किसानों की आय, पोषण सुरक्षा एवं पर्यावरणीय स्थिरता सुनिश्चित की जा सकती है।

विकल्प

कीवी की व्यावसायिक खेती

अंशु कुमार पाण्डेय[1], **कृष्ण प्रिया ग**[2] और **शिवम कुमार राजपूत**[3]

उत्तराखण्ड की समशीतोष्ण पर्वतीय परिस्थितियाँ उच्च मूल्य वाली फल फसलों के उत्पादन के लिए अत्यंत उपयुक्त हैं। पारंपरिक फसलों की घटती उत्पादकता के बीच कीवी किसानों के लिए एक लाभकारी विकल्प के रूप में उभर रहा है। उत्कृष्ट स्वाद, उच्च पोषण मूल्य तथा बेहतर भंडारण क्षमता के कारण इसकी मांग लगातार बढ़ रही है। यह फसल अपेक्षाकृत कम शीत-घंटों में भी सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है तथा रोपण के 4-5 वर्षों बाद व्यावसायिक उत्पादन देना प्रारंभ कर देती है। उत्तराखण्ड के 800-1600 मीटर ऊँचाई वाले क्षेत्र कीवी की सफल खेती के लिए उपयुक्त पाए गए हैं। उपयुक्त किस्मों का चयन, प्रभावी परागण, संतुलित पोषण एवं वैज्ञानिक बाग प्रबंधन अपनाकर उच्च गुणवत्ता का अच्छा एवं स्थिर उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। पर्वतीय क्षेत्रों में आय बढ़ाने और बागवानी के विविधीकरण की दृष्टि से कीवी एक संभावनाशील फल फसल सिद्ध हो रही है।

उत्तराखण्ड देश के प्रमुख समशीतोष्ण फल उत्पादक राज्यों में अग्रणी स्थान रखता है, जहाँ कि पर्वतीय जलवायु एवं भौगोलिक विविधता सेब, नाशपाती, आड़ू, प्लम तथा खुबानी जैसी फल फसलों के उत्पादन के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ प्रदान करती हैं। हालांकि, जलवायु परिवर्तन के कारण शीत घंटों में कमी, अनियमित वर्षा तथा कीट एवं रोगों के बढ़ते प्रकोप ने सेब उत्पादन के सामने नई चुनौतियाँ खड़ी कर दी हैं। ऐसे परिवर्तित परिदृश्य में जलवायु सहिष्णु एवं लाभकारी वैकल्पिक फल फसलों की आवश्यकता बढ़ी है, जिनमें कीवी एक महत्वपूर्ण विकल्प के रूप में उभरकर सामने आया है।

कीवी अपेक्षाकृत कम शीत-घंटों में भी सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है तथा अपने विशिष्ट स्वाद, उच्च पोषण मूल्य, बेहतर भंडारण क्षमता और आकर्षक बाजार मूल्य के कारण तेजी से लोकप्रिय हो रही है।

इसमें विटामिन सी, विटामिन ई, आहार रेशा तथा प्राकृतिक एंटीऑक्सीडेंटस प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं, जो इसे स्वास्थ्यवर्धक फल बनाते हैं। बढ़ती मांग और बेहतर आर्थिक प्रतिफल के कारण कीवी पर्वतीय क्षेत्रों में कृषि विविधीकरण, किसानों की आय वृद्धि तथा सतत बागवानी विकास के लिए एक संभावनाशील फल फसल के रूप में स्थापित हो रही है।

[1,2]शोधार्थी, वीर चंद्र सिंह गढ़वाली उत्तराखंड औद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, भरसार, पौड़ी गढ़वाल, उत्तराखंड; [3]पीएच.डी. शोध छात्र (फल विज्ञान), भाकृअनुप-भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बेंगलुरु, कर्नाटक

अगेती किस्में

अलिसन: उत्तराखण्ड की समशीतोष्ण जलवायु के लिए उपयुक्त प्रमुख व्यावसायिक किस्म है। इसके फल मध्यम आकार (70-90 ग्राम), अंडाकार, हरे गूदे वाले तथा मीठे-खट्टे स्वाद के होते हैं। यह अक्तूबर-नवंबर में पकती है और ताजे उपभोग के लिए उपयुक्त मानी जाती है। इससे लगभग 40-60 कि.ग्रा. प्रति पौधा तथा 8-12 टन प्रति एकड़ उत्पादन प्राप्त होता है।

एबॉट: यह मध्यम वृद्धि एवं संतुलित फैलाव वाली बेल है। इसके फल अंडाकार, हरे गूदे वाले तथा 70-85 ग्राम वजन के होते हैं। यह अपेक्षाकृत शीघ्र पकने वाली किस्म है, जिससे किसानों को बेहतर बाजार मूल्य प्राप्त होता है। उन्नत बाग प्रबंधन अपनाने पर 35-50 कि.ग्रा. प्रति पौधा तथा 6-9 टन प्रति एकड़ उत्पादन मिलता है।

मोंटी: यह मध्यम से तीव्र वृद्धि करने वाली तथा नियमित फल देने वाली किस्म है। इसके फल 60-80 ग्राम वजन के होते हैं। इससे लगभग 30-45 कि.ग्रा. प्रति पौधा तथा 5-8 टन प्रति एकड़ उत्पादन प्राप्त होता है।

सेब की बागवानी के विकल्प के रूप में

उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में सेब लंबे समय से प्रमुख फल फसल रहा है, परंतु हाल के वर्षों में जलवायु परिवर्तन के कारण इसकी उत्पादकता प्रभावित हुई है। शीत-घंटों में कमी, तापमान में वृद्धि तथा कीट एवं रोगों के बढ़ते प्रकोप से सेब की गुणवत्ता एवं उत्पादन में कमी दर्ज की गई है। ऐसे में किसानों के लिए लाभकारी एवं जलवायु अनुकूल वैकल्पिक फसलों की आवश्यकता बढ़ी है।

कीवी एक उच्च मूल्य वाली फल फसल है, जो अपेक्षाकृत कम शीत-घंटों में भी सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है तथा रोपण के 4-5 वर्षों बाद व्यावसायिक उत्पादन देना प्रारंभ कर देती है। इसकी बाजार मांग लगातार बढ़ रही है और किसानों को आकर्षक मूल्य प्राप्त होता है। विटामिन सी, विटामिन ई, आहार रेशा तथा प्राकृतिक एंटीऑक्सीडेंटस

पछेती किस्में

हेवर्ड: यह विश्व की सर्वाधिक लोकप्रिय व्यावसायिक किस्मों में से एक है। इसके बड़े, अंडाकार फल 80-100 ग्राम वजन के होते हैं। विटामिन सी से भरपूर यह किस्म ताजे उपभोग एवं प्रसंस्करण दोनों के लिए उपयुक्त है। इससे लगभग 40-60 कि.ग्रा. प्रति पौधा तथा 6-10 टन प्रति एकड़ उत्पादन प्राप्त होता है।

ग्रीनलाइट: यह मध्यम से तीव्र वृद्धि एवं नियमित फलन वाली किस्म है। इसके फल 70-85 ग्राम वजन के, अंडाकार, हरे गूदे वाले तथा संतुलित मीठे-खट्टे स्वाद के होते हैं। इससे लगभग 30-50 कि.ग्रा. प्रति पौधा तथा 10-20 टन प्रति एकड़ उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

टी-बार ट्रेलिस पर कीवी की बढ़वार

से भरपूर होने के कारण यह अत्यंत पौष्टिक फल माना जाता है।

सेब की तुलना में कीवी में कीट एवं रोगों का प्रकोप अपेक्षाकृत कम होता है तथा उत्पादन लागत भी कम आती है। ट्रेलिस प्रणाली अपनाकर तथा अंतरवर्ती फसलों की खेती से अतिरिक्त आय प्राप्त की जा सकती है। इन विशेषताओं के कारण कीवी पर्वतीय क्षेत्रों में सेब के एक लाभकारी एवं टिकाऊ विकल्प के रूप में तेजी से उभर रहा है।

भूमि एवं जलवायु

कीवी एक समशीतोष्ण फल फसल है, जिसकी सफल खेती के लिए मध्यम ठंडी जलवायु तथा उपयुक्त भूमि आवश्यक होती है। उत्तराखण्ड के 800-1600 मीटर ऊँचाई वाले मध्य एवं उच्च पर्वतीय क्षेत्र इसकी खेती के लिए अत्यंत उपयुक्त हैं।

सफल पुष्पण एवं फलन के लिए लगभग 700-1000 शीत-घंटों की आवश्यकता होती है। ग्रीष्मकाल में 20-30 डिग्री सेल्सियस तापमान इसके विकास के लिए अनुकूल रहता है, जबकि अत्यधिक गर्मी, पाला तथा तेज हवाएँ फसल को नुकसान पहुँचा सकती हैं। इसकी खेती के लिए अच्छी जल-निकास वाली दोमट अथवा बलुई-दोमट मिट्टी, जिसका पीएच 5.5-6.5 हो, सर्वाधिक उपयुक्त मानी जाती है।

प्रवर्धन

कीवी का व्यावसायिक प्रवर्धन मुख्यत: वानस्पतिक विधियों से किया जाता है, क्योंकि बीज से तैयार पौधों में आनुवंशिक विविधता अधिक होती है तथा नर एवं मादा पौधों का अनुपात सुनिश्चित नहीं रहता। इसके कारण फल उत्पादन एवं गुणवत्ता में असमानता आ सकती है। वानस्पतिक विधियों से तैयार पौधे मूल पौधे के गुणों को सुरक्षित रखते हैं तथा शीघ्र फलन में आते हैं। हार्डवुड कटिंग कीवी प्रवर्धन की सबसे प्रचलित एवं सफल विधि है। इसके लिए सुषुप्तावस्था में स्वस्थ एवं परिपक्व शाखाओं से 15-20 सें.मी. लंबी कलमें तैयार कर जड़ वृद्धि प्रोत्साहक से उपचारित किया जाता है। इसके बाद इन्हें नर्सरी में रोपित किया जाता है। उपयुक्त तापमान एवं आर्द्रता मिलने पर कुछ सप्ताह में जड़ें विकसित हो जाती हैं और तैयार पौधों को मुख्य खेत में प्रतिरोपित किया जाता है।

मध्यम अवधि में पकने वाली किस्म

ब्रूनो: यह मजबूत एवं अधिक फैलाव वाली बेल वाली व्यावसायिक किस्म है। इसके फल लंबे, हल्के हरे गूदे वाले तथा संतुलित मीठे-खट्टे स्वाद के होते हैं। औसत फल भार 70-90 ग्राम होता है। यह ताजा उपभोग के साथ-साथ जूस एवं जैम जैसे प्रसंस्करित उत्पादों के लिए भी उपयुक्त है। इससे लगभग 40-60 कि.ग्रा. प्रति पौधा तथा 8-10 टन प्रति एकड़ उत्पादन प्राप्त होता है।

परागणकर्ताओं का महत्व

कीवी एक द्विगृही फल फसल है, जिसमें नर एवं मादा पौधे अलग-अलग होते हैं। इसलिए व्यावसायिक बागों में उपयुक्त परागणकर्ता किस्मों का होना अनिवार्य है। पर्याप्त परागण के अभाव में फल धारण कम होता है, फलों का आकार छोटा रह जाता है तथा उत्पादन एवं गुणवत्ता दोनों प्रभावित होते हैं। सामान्यत: एक नर पौधा 5-8 मादा पौधों के लिए पर्याप्त माना जाता है। नर पौधे पराग उपलब्ध करवाते हैं, जिससे मादा पुष्पों में सफल निषेचन एवं बेहतर फल विकास सुनिश्चित होता है।

टमुरी: यह कीवी की प्रमुख नर (परागणकर्ता) किस्म है, जिसका उपयोग

सिंचाई

कीवी एक बहुवर्षीय फल फसल है, जिसकी उथली जड़ प्रणाली के कारण मिट्टी में पर्याप्त नमी बनाए रखना आवश्यक होता है। हालांकि, जलभराव इसकी जड़ों के लिए हानिकारक होता है, इसलिए उचित जल-निकास की व्यवस्था अनिवार्य है। प्रारंभिक अवस्था में पौधों की अच्छी वृद्धि के लिए हल्की एवं नियमित सिंचाई करनी चाहिए। फल बनने एवं विकास के दौरान जल की आवश्यकता बढ़ जाती है, इसलिए इस अवधि में समय-समय पर सिंचाई करने से उत्पादन एवं फल की गुणवत्ता में सुधार होता है। सामान्यत: गर्मियों में 7-10 दिनों के अंतराल पर तथा सर्दियों में आवश्यकता के अनुसार सिंचाई की जाती है। ड्रिप सिंचाई प्रणाली सबसे उपयुक्त मानी जाती है, क्योंकि इससे जल की बचत होती है, मिट्टी में नमी संतुलित रहती है तथा पौधों को आवश्यकतानुसार पानी उपलब्ध होता है।

तार की सहायता से कीवी बेल का विकास

विशेष रूप से हेवर्ड जैसी मादा किस्मों के साथ किया जाता है। यह उच्च गुणवत्ता वाला प्रचुर पराग उत्पन्न करती है, जिससे प्रभावी परागण एवं बेहतर फल धारण होता है। इसे सामान्यत: 1:5 से 1:8 (नर : मादा) के अनुपात में लगाया जाता है।

मटुआ: यह शीघ्र पुष्पण करने वाली प्रमुख नर किस्म है, जो प्रारंभिक एवं मध्यम अवधि में फूलने वाली मादा किस्मों के परागण के लिए उपयुक्त मानी जाती है। इसकी पराग उत्पादन क्षमता अच्छी होती है।

बोना: यह एक सहायक परागणकर्ता किस्म है। अन्य नर किस्मों के साथ इसके उपयोग से परागण अवधि बढ़ जाती है, जिससे निषेचन एवं फल धारण में सुधार होता है।

अन्य किस्में

एबॉट: यह एक लोकप्रिय व्यावसायिक मादा किस्म है। इसके फल मध्यम से बड़े आकार के, हल्के भूरे रोएँदार छिलके तथा हरे, रसदार गूदे वाले होते हैं। फलों का स्वाद मीठा-खट्टा एवं आकर्षक होता है तथा कुल घुलनशील ठोस पदार्थ (टी.एस.एस.) लगभग 13-15° ब्रिक्स होता है। उचित बाग प्रबंधन अपनाने पर एक परिपक्व पौधे से लगभग 40-60 कि.ग्रा. तथा प्रति एकड़ 3.5-5.5 टन उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

जोन्स: यह कीवी की एक प्रमुख मादा किस्म है। इसके फल मध्यम से बड़े आकार के, भूरे रोएँदार छिलके तथा हरे गूदे वाले होते हैं। पौधे की वृद्धि सशक्त होने के कारण इसके लिए ट्रेलिस अथवा पर्गोला जैसी मजबूत सहारा प्रणाली आवश्यक होती है। एक फल का औसत वजन 70-110 ग्राम होता है। उचित प्रबंधन की स्थिति में प्रति पौधा लगभग 20-35 कि.ग्रा. तथा प्रति एकड़ 3.5-5.5 टन उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

भूमि की तैयारी एवं रोपाई

कीवी की सफल खेती के लिए भूमि की उचित तैयारी अत्यंत आवश्यक है। रोपाई से पूर्व खेत की गहरी जुताई कर मिट्टी को भुरभुरा बनाया जाता है तथा खरपतवार हटाकर समतल एवं अच्छी जल-निकास की व्यवस्था की जाती है। 60 × 60 × 60 सें.मी. आकार के गड्ढे रोपाई से 2-3 सप्ताह पूर्व खोदकर खुले छोड़ दिए जाते हैं। इसके बाद ऊपरी मिट्टी में 20-25 कि.ग्रा. सड़ी गोबर की खाद तथा अनुशंसित मात्रा में फॉस्फोरस उर्वरक मिलाकर गड्ढे भर दिए जाते हैं। पौधों की रोपाई सामान्यत: 4-5 × 5-6 मीटर की दूरी पर की जाती है, जिससे पर्याप्त प्रकाश एवं वायु संचार बना रहे।

रोपाई के समय स्वस्थ एवं प्रमाणित पौधों का चयन करें तथा जड़ों को बिना मोड़े सावधानीपूर्वक लगाकर तुरंत हल्की सिंचाई करें। कीवी द्विगृही फसल होने के कारण नर एवं मादा पौधों का अनुपात लगभग 1:6-8 रखना उपयुक्त माना जाता है।

उर्वरक प्रयोग: कीवी में उर्वरकों की अनुशंसित मात्रा दो समान भागों में देना अधिक लाभकारी होता है, जिससे पौधों को पूरे मौसम में संतुलित पोषण मिलता रहे। उर्वरकों की

सारणी: कीवी फसल में खाद्य एवं उर्वरक की अनुशंसित मात्रा

पौधों की आयु (वर्ष)	गोबर की खाद (कि.ग्रा./पौधा)	नाइट्रोजन (ग्राम/पौधा)	फॉस्फोरस (ग्राम/पौधा)	पोटाश (ग्राम/पौधा)
1-2	20-25	200-400	220-440	266-532
3-4	30-35	600-800	660-880	800-1064
5 वर्ष एवं अधिक	40	1000	1100	1330

उपज एवं लाभ

कीवी एक उच्च मूल्य वाली फल फसल है, जो रोपाई के 3-4 वर्षों बाद व्यावसायिक फलन प्रारंभ करती है तथा 7-8 वर्षों में पूर्ण उत्पादन देने लगती है। एक विकसित पौधे से औसतन 30-50 कि.ग्रा. तथा प्रति हैक्टर लगभग 20-30 टन फल उत्पादन प्राप्त होता है। पोषण से भरपूर होने के कारण इसकी बाजार में अच्छी मांग रहती है। इसका उपयोग ताजे फल के साथ-साथ जूस, जैम एवं अन्य प्रसंस्करित उत्पादों के निर्माण में भी किया जाता है।

पहली मात्रा जनवरी-फरवरी में नई वृद्धि प्रारंभ होने से पूर्व तथा दूसरी मात्रा अप्रैल-मई में फल बनने के बाद देनी चाहिए। इससे पौधों की वृद्धि के साथ-साथ फल का विकास, आकार एवं गुणवत्ता बेहतर होती है।

उर्वरकों को सीधे तने के पास डालने के स्थान पर ड्रिप लाइन के आसपास 20-30 सें.मी. गहरी नाली बनाकर मिट्टी में अच्छी तरह मिला देना चाहिए। इससे पोषक तत्व जड़ों तक आसानी से पहुँचते हैं और उनका उपयोग अधिक प्रभावी ढंग से हो पाता है। उर्वरक देने के तुरंत बाद हल्की सिंचाई करना आवश्यक है, ताकि पोषक तत्व घुलकर जड़ क्षेत्र तक पहुँच सकें।

प्रशिक्षण एवं कटाई-छंटाई: कीवी एक बेलनुमा फल फसल है, इसलिए प्रारंभिक अवस्था से ही इसे मजबूत सहारा प्रणाली पर प्रशिक्षित करना आवश्यक होता है। इसके लिए सामान्यत: टी-बार अथवा टेलीफोन ट्रेलिस प्रणाली अपनाई जाती है।

रोपाई के बाद एक स्वस्थ एवं मजबूत टहनी को मुख्य तने के रूप में विकसित किया जाता है तथा उसे बाँस, तार या खंभों के सहारे सीधा ऊपर बढ़ाया जाता है। उचित ऊँचाई प्राप्त होने पर शीर्ष भाग की कटाई कर पार्श्व शाखाओं के विकास को प्रोत्साहित किया जाता है। इसके बाद प्रत्येक वर्ष सूखी, रोगग्रस्त, कमजोर एवं आपस में उलझी शाखाओं की छंटाई की जाती है, जिससे नई फलधारी शाखाओं का विकास होता है।

उचित प्रशिक्षण एवं कटाई-छंटाई से प्रकाश और वायु संचार बेहतर होता है तथा बाग प्रबंधन, तुड़ाई और फल की गुणवत्ता में भी सुधार होता है।

निराई - गुड़ाई: कीवी बागों में निराई-गुड़ाई

उन्नत तकनीक से भरपूर उपज

का विशेष महत्व है, क्योंकि प्रारंभिक अवस्था में खरपतवार पोषक तत्व, नमी एवं प्रकाश के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं। समय पर निराई करने से खरपतवार नियंत्रण होता है तथा पौधों की वृद्धि अच्छी रहती है। गुड़ाई से मिट्टी भुरभुरी होती है, वायु संचार बढ़ता है तथा नमी संरक्षण में सहायता मिलती है।

सामान्यत: वर्ष में 2-3 बार हल्की गुड़ाई लाभकारी होती है, विशेषकर वर्षा ऋतु के बाद। कीवी की जड़ें सतही होती हैं, इसलिए गुड़ाई सावधानीपूर्वक एवं उथली करनी चाहिए, ताकि जड़ों को क्षति न पहुँचे।

अंतरवर्ती फसल: कीवी बागों में प्रारंभिक 3-4 वर्षों तक अंतरवर्ती फसलें ली जा सकती हैं, क्योंकि इस अवधि में पौधों के बीच पर्याप्त खाली स्थान रहता है। इससे भूमि का बेहतर उपयोग, अतिरिक्त आय तथा खरपतवार नियंत्रण में सहायता मिलती है।

कीवी के साथ दलहनी फसलें, जैसे मटर एवं फ्रेंच बीन, तथा कम ऊँचाई वाली सब्जियाँ, जैसे पालक, धनिया एवं मूली, उपयुक्त रहती हैं। दलहनी फसलें मृदा में नाइट्रोजन की उपलब्धता बढ़ाने में भी सहायक होती हैं। अंतरवर्ती फसलों का चयन इस प्रकार करना चाहिए कि वे कीवी पौधों के साथ नमी एवं पोषक तत्वों के लिए अधिक प्रतिस्पर्धा न करें। पौधों के विकसित होने पर अंतरवर्ती फसलों को धीरे-धीरे बंद कर देना चाहिए।

तुड़ाई: कीवी में तुड़ाई का सही समय फल की गुणवत्ता, भंडारण क्षमता एवं बाजार मूल्य को प्रभावित करता है। सामान्यत: फल, फूल आने के 150-180 दिनों बाद परिपक्व हो जाते हैं। तुड़ाई तब करनी चाहिए, जब फलों का कुल घुलनशील ठोस पदार्थ (टी.एस.एस.) लगभग 6.5-7.0° ब्रिक्स हो। इस अवस्था में फल भंडारण एवं परिवहन के लिए उपयुक्त होते हैं।

तुड़ाई के समय फल पूर्ण विकसित, हरे रंग के एवं कठोर होने चाहिए। फलों की तुड़ाई हाथ से सावधानीपूर्वक की जाती है, ताकि उन्हें क्षति न पहुँचे। सामान्यत: यह कार्य अक्तूबर-नवंबर में किया जाता है, जो क्षेत्र की जलवायु पर निर्भर करता है।

भंडारण: कीवी की भंडारण क्षमता अच्छी होती है। तुड़ाई के बाद भंडारण के लिए पूर्ण विकसित, स्वस्थ एवं रोगमुक्त फलों का चयन किया जाता है तथा ग्रेडिंग द्वारा क्षतिग्रस्त फलों को अलग कर दिया जाता है। सामान्य तापमान पर फल 2-3 सप्ताह तक सुरक्षित रहते हैं, जबकि 0-1 डिग्री सेल्सियस तापमान एवं 90-95 प्रतिशत सापेक्ष आर्द्रता पर शीत भंडारण में इन्हें 3-4 माह तक सुरक्षित रखा जा सकता है। इससे फलों की गुणवत्ता एवं विपणन अवधि दोनों बढ़ जाती हैं।

अल्पदोहित

पोषण से भरपूर स्वॉर्ड बीन का उत्पादन

महिमा सनोड़िया[1], **धीरेंद्र राजपूत**[2], **प्रभांशु मिश्रा**[1] और **प्रकाश सिंगाठिया**[3]

स्वॉर्ड बीन (कैनावेलिया ग्लैडियाटा) एक कम प्रचलित, किंतु अत्यंत पौष्टिक सब्जी फसल है, जिसकी खेती मुख्यत: बिहार, झारखंड तथा अन्य शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्रों में की जाती है। यह फसल प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अच्छी वृद्धि करने की क्षमता रखती है तथा पोषण सुरक्षा एवं सतत कृषि की दृष्टि से महत्वपूर्ण मानी जाती है। यद्यपि स्वॉर्ड बीन की आनुवंशिक विविधता के संरक्षण तथा इसके व्यावसायिक उपयोग के प्रति जागरूकता अपेक्षाकृत कम है, फिर भी इसके उत्कृष्ट पोषण एवं औषधीय गुण इसे विशेष महत्व प्रदान करते हैं। इसके कोमल फल, बीज एवं अन्य भाग प्रोटीन, आहार रेशा, खनिज तत्वों तथा जैव सक्रिय यौगिकों से समृद्ध होते हैं। विभिन्न अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि स्वॉर्ड बीन में एंटीऑक्सीडेंट, एंटीमाइक्रोबियल, एंटीवायरल, सूजनरोधी तथा रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने वाले गुण पाए जाते हैं, जो मानव स्वास्थ्य के लिए लाभकारी हैं। इसके अतिरिक्त, इसमें उपस्थित फाइटोकैमिकल यौगिक अनेक दीर्घकालिक रोगों की रोकथाम में सहायक हो सकते हैं। प्रस्तुत लेख में स्वॉर्ड बीन के कृषि, पोषण एवं औषधीय महत्व पर प्रकाश डालते हुए इसके विभिन्न फार्माकोलॉजिकल लाभों तथा भविष्य में इसके व्यापक उपयोग की संभावनाओं की समीक्षा की गई है।

पौष्टिक स्वॉर्ड बीन, जिसका वैज्ञानिक नाम कैनावेलिया ग्लैडियाटा है, लेग्यूमिनोसी कुल की एक कम उपयोग में आने वाली सूखा-सहनशील तथा बहुवर्षीय आरोही (चढ़ने वाली) बेल है। इसकी विश्वभर में लगभग 50-60 प्रजातियाँ पाई जाती हैं, जिनमें से अनेक भारत के उष्णकटिबंधीय एवं उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों के शुष्क एवं अर्धशुष्क भागों में प्राकृतिक रूप से विकसित होती हैं। दक्षिण एवं दक्षिण-पूर्व एशिया, विशेषकर भारत, श्रीलंका और म्यांमार में इसकी खेती मुख्यत: कोमल फलियों, पौष्टिक बीजों तथा औषधीय गुणों के कारण की जाती है।

[1]भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली, [2]रानी लक्ष्मीबाई केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय झांसी, उत्तर प्रदेश, [3]भाकृअनुप - भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बेंगलुरु

वानस्पतिक वर्णन: स्वॉर्ड बीन एक दलहनी फसल है, जिसके पौधे दो प्रकार के होते हैं: सीधे खड़े रहने वाले तथा आंशिक रूप से फैलने या सहारे के साथ बढ़ने वाले। इसकी पत्तियाँ त्रिपर्णी होती हैं। फलियाँ मोटी, चपटी एवं तलवार के आकार की होती हैं, जिनकी लंबाई लगभग 10-15 सें.मी. तथा चौड़ाई 3-5 सें.मी. होती है। परिपक्व बीज बड़े, चपटे एवं अंडाकार होते हैं तथा उनका रंग लाल, गहरा लाल अथवा गुलाबी-भूरा होता है।

कोमल फलियों एवं अपरिपक्व बीजों में कैनावेलिन तथा कॉनकैनावेलिन-ए जैसे प्रोटीन अपेक्षाकृत कम मात्रा में पाए जाते हैं, इसलिए इनका उपयोग मुख्यत: सब्जी के रूप में किया जाता है। उपयोग से पहले कोमल फलियों को लगभग 15 मिनट तक उबलते पानी में उबालने से इनका कड़वापन कम हो जाता है। इसके बाद इन्हें मसालों के साथ पकाकर सब्जी के रूप में उपयोग किया जाता है।

औषधीय गुण: स्वॉर्ड बीन के औषधीय गुणों पर किए गए विभिन्न वैज्ञानिक अध्ययनों से पता चलता है कि यह अनेक महत्वपूर्ण जैविक गतिविधियाँ प्रदर्शित करती है, जो इसे पोषण के साथ-साथ औषधीय दृष्टि से भी

सारणी 1. स्वॉर्ड बीन में विटामिन (प्रति 100 ग्राम)

विटामिन	मात्रा
विटामिन ए	40 आईयू
थायमिन (विटामिन बी$_1$)	0.2-0.8 मि.ग्रा.
राइबोफ्लेविन (विटामिन बी$_2$)	0.1-1.8 मि.ग्रा.
नियासिन (विटामिन बी$_3$)	2 मि.ग्रा.
विटामिन सी	ताजा फलियों में 32 मि.ग्रा.; सूखे बीजों में 1 मि.ग्रा.

सारणी 2. स्वॉर्ड बीन के बीजों में खनिज तत्व (प्रति 100 ग्राम)

खनिज तत्व	मात्रा
पोटेशियम	1,639 मि.ग्रा.
कैल्शियम	158-510 मि.ग्रा.
फॉस्फोरस	298-601 मि.ग्रा.
मैग्नीशियम	480 मि.ग्रा.
आयरन (लौह)	7-11 मि.ग्रा.
जिंक	6.6 मि.ग्रा.
मैंगनीज	2.2 मि.ग्रा.
तांबा (कॉपर)	0.8 मि.ग्रा.

महत्वपूर्ण बनाती हैं। इसके प्रमुख औषधीय गुण इस प्रकार हैं:

एंटीऑक्सीडेंट सक्रियता: स्वॉर्ड बीन की अपरिपक्व एवं परिपक्व दोनों फलियों में प्रबल एंटीऑक्सीडेंट गुण पाए जाते हैं। इनमें उपस्थित गैलिक अम्ल, गैलोटैनिन्स तथा फ्लेवोनॉयड्स जैसे पॉलीफेनॉलिक यौगिक शरीर में बनने वाले हानिकारक मुक्त कणों (फ्री रेडिकल्स) को निष्क्रिय कर ऑक्सीडेटिव तनाव से सुरक्षा प्रदान करते हैं।

अध्ययनों से यह भी स्पष्ट हुआ है कि अपरिपक्व फलियों में एंटीऑक्सीडेंट सक्रियता अपेक्षाकृत अधिक होती है। विशेष रूप से लाल बीजों वाली फलियों में पॉलीफेनॉल एवं गैलोटैनिन्स की अधिक मात्रा होने के कारण उनकी एंटीऑक्सीडेंट क्षमता अधिक प्रभावी मानी जाती है। ये यौगिक सुपरऑक्साइड एवं हाइड्रॉक्सिल जैसे मुक्त कणों को निष्क्रिय करने में सक्षम हैं, जिससे अनेक दीर्घकालिक रोगों के जोखिम को कम करने में सहायता मिल सकती है।

कैंसर-रोधी प्रभाव: स्वॉर्ड बीन में गैलोटैनिन्स, लेक्टिन्स तथा कॉनकैनावेलिन-ए जैसे जैव-सक्रिय यौगिक पाए जाते हैं, जिनमें कैंसर-रोधी क्षमता देखी गई है। विभिन्न अध्ययनों के अनुसार ये यौगिक मेलानोमा, ल्यूकेमिया एवं कोलोरेक्टल कैंसर कोशिकाओं की वृद्धि को रोकने में सहायक हो सकते हैं। लेक्टिन्स कोशिकाओं की सतह पर उपस्थित शर्करा अणुओं से जुड़कर कैंसर कोशिकाओं को पहचानने एवं उनकी वृद्धि को नियंत्रित करने में भूमिका निभाते हैं। इसके अतिरिक्त, कैनावानिन तथा 4-ओ-मिथाइलगैलिक अम्ल जैसे यौगिक ट्यूमर के विकास एवं नई रक्त वाहिकाओं के निर्माण (एंजियोजेनेसिस) को प्रभावित करने की क्षमता रखते हैं।

स्वस्थ बीज सहित सूखी फली

स्वॉर्ड बीन की पत्तियां

सारणी 3. स्वॉर्ड बीन की ताजा फलियों एवं सूखे बीजों में पोषण मान (प्रति 100 ग्राम)

पोषक तत्व	ताजा फलियाँ	सूखे बीज
जल	83.6 ग्राम	10.7 ग्राम
ऊर्जा	59 किलो कैलोरी (247 किलोजूल)	347 किलो कैलोरी (1,453 किलोजूल)
प्रोटीन	4.6 ग्राम	24.5 ग्राम
वसा	0.4 ग्राम	2.6 ग्राम
कार्बोहाइड्रेट	10.7 ग्राम	59 ग्राम
आहार रेशा (डाइटरी फाइबर)	2.6 ग्राम	7.4 ग्राम

रोगाणुरोधी गुण: स्वॉर्ड बीन की फलियों एवं बीजों में उपस्थित गैलोटैनिन्स, लेक्टिन्स तथा कैनावानिन में जीवाणुरोधी, कवकरोधी एवं विषाणुरोधी गुण पाए गए हैं। अध्ययनों में इन यौगिकों को बैसिलस सब्टिलिस, स्टैफिलोकोकस ऑरियस, एस्चेरिशिया कोलाई तथा स्यूडोमोनास एरुजिनोसा जैसे रोगजनक जीवाणुओं की वृद्धि को रोकने में प्रभावी पाया गया है। कैनावानिन सूक्ष्मजीवों के आरएनए एवं डीएनए के निर्माण में बाधा डालकर उनके विकास को नियंत्रित करने में सहायक माना जाता है।

मधुमेह रोधी एवं यकृत सुरक्षात्मक प्रभाव: स्वॉर्ड बीन में उपस्थित फेनोलिक यौगिक एवं गैलोटैनिन्स यकृत की सुरक्षा (हेपेटोप्रोटेक्टिव प्रभाव) में सहायक माने जाते हैं। इसमें मौजूद कैनावानिन तथा α-एमाइलेज अवरोधक कार्बोहाइड्रेट के पाचन एवं अवशोषण की गति को कम कर रक्त शर्करा के स्तर को नियंत्रित रखने में सहायता कर सकते हैं। कुछ अध्ययनों में मधुमेह से संबंधित जटिलताओं, विशेषकर रेटिनोपैथी, के जोखिम को कम करने की भी संभावना व्यक्त की गई है।

गर्भधारण अवधि पर प्रभाव: प्रायोगिक अध्ययनों में पाया गया कि गर्भावस्था

वितरण एवं अनुकूलन

भारत में स्वॉर्ड बीन की खेती मुख्यत: बिहार, झारखंड, पूर्वोत्तर तथा दक्षिणी राज्यों में घरों के पीछे स्थित बगीचों (किचन गार्डन) में की जाती है। भारत में कैनावेलिया वंश की आठ प्रजातियाँ दर्ज की गई हैं, जिनमें कैनावेलिया अफ्रीकाना, कैनावेलिया एन्सीफॉर्मिस तथा कैनावेलिया ग्लैडियाटा प्रमुख हैं। यह फसल कम उर्वरता वाली तथा 4.5 पीएच तक की अम्लीय मृदा में भी सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है। स्वॉर्ड बीन की अच्छी वृद्धि के लिए पूर्ण सूर्य प्रकाश उपयुक्त रहता है, हालांकि यह अपेक्षाकृत ठंडी जलवायु को भी सहन कर लेती है। इसकी खेती 15-30° सें. तापमान तथा समुद्र तल से लगभग 1,000 मीटर तक की ऊँचाई वाले क्षेत्रों में सफलतापूर्वक की जा सकती है। यह एक कठोर उष्णकटिबंधीय दलहनी फसल है, जो जलभराव एवं लवणीय परिस्थितियों को भी सहन करने की क्षमता रखती है। ग्रामीण क्षेत्रों में स्वॉर्ड बीन को प्राय: बाँस या झाड़ियों से बनी घरेलू बाड़ों पर चढ़ाकर उगाया जाता है। इसकी कोमल फलियों का उपयोग सब्जी, हरे चारे तथा आवरण (कवर) फसल के रूप में किया जाता है। पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय द्वारा वित्तपोषित एक सर्वेक्षण के दौरान इस प्रजाति में बड़े सफेद अथवा गुलाबी फूल तथा तलवार के आकार की विशिष्ट फलियाँ देखी गई, जिनके कारण इसे स्वॉर्ड बीन नाम दिया गया है।

के प्रारंभिक चरण में स्वॉर्ड बीन के बीजों के आटे का सेवन करने वाले चूहों में गर्भधारण अवधि कुछ कम हुई, जबकि यकृत, प्लीहा, गुर्दे एवं आंत जैसे प्रमुख अंगों पर कोई विषाक्त अथवा गर्भपातजनक प्रभाव नहीं देखा गया। हालांकि, मनुष्यों में इसकी पुष्टि के लिए और अधिक शोध की आवश्यकता है।

विषाणु रोधी क्रियाएँ: प्रयोगशाला अध्ययनों में एलिसा तकनीक द्वारा यह पाया गया कि स्वॉर्ड बीन के बीजों से प्राप्त लेक्टिन एचआईवी-1 रिवर्स ट्रांसक्रिप्टेज एंजाइम की सक्रियता को अवरुद्ध कर सकते हैं। यह एंजाइम विषाणु की प्रतिकृति के लिए आवश्यक होता है। हालांकि, इस संभावित प्रभाव की नैदानिक पुष्टि के लिए व्यापक मानव अध्ययन अभी अपेक्षित हैं।

खाद एवं उर्वरक प्रबंधन: स्वॉर्ड बीन की अच्छी वृद्धि एवं अधिक उपज के लिए खेत की तैयारी के समय 20-25 टन प्रति हैक्टर अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद मिलाएँ। बुआई से पहले 22 कि.ग्रा. यूरिया, 375 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फॉस्फेट (एसएसपी) तथा 67 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश (एमओपी) प्रति हैक्टर की दर से खेत में दें।

फसल की प्रारंभिक वृद्धि के लिए बुआई के 25-30 दिनों बाद 22 कि.ग्रा. यूरिया प्रति हैक्टर की दर से टॉप ड्रेसिंग करें।

बुआई विधि: स्वॉर्ड बीन की बुआई सामान्यत: जुलाई-अगस्त में की जाती है। वर्षा ऋतु में जलभराव से बचाव के लिए बीजों की बुआई 15 सें.मी. ऊँची मेड़ों पर करें। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 75-100 सें.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 45-60 सें.मी. रखें। बीज दर 25-40 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर तथा बुआई की गहराई 3-5 सें.मी. उपयुक्त रहती है।

फसल की देखभाल: अच्छे अंकुरण के लिए बुआई के समय पर्याप्त नमी आवश्यक है। वर्षा न होने पर हल्की सिंचाई करें तथा वर्षा ऋतु में जल निकास की उचित व्यवस्था बनाए रखें। शीत ऋतु में सामान्यत: सप्ताह में एक बार सिंचाई पर्याप्त रहती है।

बुआई के 25-30 दिनों बाद निराई-गुड़ाई कर यूरिया की टॉप ड्रेसिंग करें तथा पौधों के आधार पर मिट्टी चढ़ाएँ। बेलदार किस्मों के लिए बाँस, तार या एंगल आयरन से बनी ट्रेलिस का उपयोग करें। उचित सहारा मिलने से बेलों की वृद्धि अच्छी होती है तथा फूल एवं फल अधिक लगते हैं।

स्वार्ड बीन के फूल एवं परिपक्व फली

प्रमुख कीट एवं रोग: स्वॉर्ड बीन सामान्यत: अनेक कीटों एवं रोगों के प्रति सहनशील फसल है। इसके प्रमुख कीटों में आर्मी वर्म तथा तना छेदक भृंग के लार्वा शामिल हैं।

इसके बीज भंडारण कीटों के प्रति भी अपेक्षाकृत प्रतिरोधी होते हैं। रोगों में जड़ सड़न प्रमुख फफूंदजनित समस्या है, जिसके नियंत्रण के लिए बुआई से पूर्व बीजों का उपयुक्त कवकनाशी से उपचार करना चाहिए। इसके अतिरिक्त, यह फसल टमाटर स्पॉटेड विल्ट वायरस की वैकल्पिक परपोषी भी हो सकती है, इसलिए खेत की नियमित निगरानी तथा रोगग्रस्त पौधों को समय पर हटाना आवश्यक है।

कटाई उपरांत प्रबंधन: सब्जी के रूप में उपयोग के लिए फलियों की तुड़ाई उस अवस्था में करनी चाहिए, जब वे कोमल हों तथा उनमें रेशेदारपन विकसित न हुआ हो। तुड़ाई प्रात: अथवा सायंकाल के समय करने से फलियों की ताजगी एवं गुणवत्ता बनी रहती है। कटाई के बाद फलियों को आकार, लंबाई एवं गुणवत्ता के आधार पर छाँटकर श्रेणीबद्ध करें।

अच्छी गुणवत्ता वाली समान आकार की फलियों को बाजार में बेहतर मूल्य प्राप्त होता है। विपणन के लिए इन्हें बाँस की टोकरियों अथवा जूट की बोरियों में पैक कर भेजा जा सकता है।

स्वॉर्ड बीन एक पोषण एवं औषधीय दृष्टि से महत्वपूर्ण, किंतु कम उपयोग में लाई जाने वाली दलहनी सब्जी फसल है। इसके कोमल फल एवं बीज प्रोटीन, आहार रेशा, खनिज तथा जैव-सक्रिय यौगिकों से भरपूर होते हैं। विभिन्न अध्ययनों में इसके एंटीऑक्सीडेंट, रोगाणुरोधी, विषाणुरोधी, मधुमेह-रोधी, सूजनरोधी तथा प्रतिरक्षा-वर्धक गुणों की पुष्टि हुई है।

साथ ही, इसकी सूखा सहनशीलता, प्रतिकूल परिस्थितियों में अनुकूलन क्षमता तथा बहुउपयोगिता इसे जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों के बीच एक संभावनाशील जलवायु अनुकूल फसल बनाती है। इसके संरक्षण, वैज्ञानिक उत्पादन एवं व्यावसायिक उपयोग को बढ़ावा देकर पोषण सुरक्षा, आय वृद्धि तथा टिकाऊ कृषि को सुदृढ़ किया जा सकता है। ■

प्याज बीज उत्पादन की वैज्ञानिक विधि

कमलेश कुमार यादव, पुष्पा उज्जैनिया, एम आर चौधरी और **उत्तम शिवरान**

प्याज भारत की एक महत्वपूर्ण नकदी फसल है, यह प्राय: द्विवार्षिक फसल है और इसके बीज उत्पादित करने में दो पूरे मौसम लगते हैं। पहले वर्ष में कंद बनते हैं और दूसरे वर्ष डंठल विकसित होकर बीज उत्पन्न करते हैं। देश में प्याज की बढ़ती मांग के साथ उच्च गुणवत्ता वाले बीज की आवश्यकता भी निरंतर बढ़ रही है। पारंपरिक किस्मों की तुलना में संकर किस्में अधिक उत्पादन, बेहतर गुणवत्ता, समान आकार के कंद, आकर्षक रंग तथा रोग एवं प्रतिकूल परिस्थितियों के प्रति अधिक सहनशीलता प्रदान करती हैं। यही कारण है कि वर्तमान समय में किसान एवं बीज उत्पादक संकर प्याज बीज उत्पादन की ओर तेजी से आकर्षित हो रहे हैं। प्याज में संकर बीज उत्पादन एक वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रक्रिया है, जिसमें प्रजनक बीज - आधार बीज - प्रमाणित बीज उत्पादन के चरण हैं। गुणवत्तापूर्ण संकर बीज न केवल प्याज की उत्पादकता एवं गुणवत्ता में वृद्धि करते हैं, बल्कि किसानों की आय बढ़ाने और देश में उन्नत बीज की बढ़ती मांग को पूरा करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसलिए आधुनिक तकनीकों एवं वैज्ञानिक अनुशंसाओं के अनुरूप संकर प्याज बीज उत्पादन को बढ़ावा देना समय की आवश्यकता है।

संकर प्याज बीज उत्पादन की सफलता उचित किस्मों के चयन, वैज्ञानिक उत्पादन तकनीकों तथा परागण प्रबंधन पर निर्भर करती है। प्रत्येक चरण में निर्धारित मानकों का पालन करने से ही उच्च अंकुरण क्षमता, आनुवंशिक शुद्धता एवं गुणवत्तापूर्ण संकर बीज प्राप्त किए जा सकते हैं।

जलवायु एवं भूमि: प्याज बीज उत्पादन समशीतोष्ण और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों के लिए व्यापक रूप से अनुकूल है। प्याज सर्दी के मौसम की फसल है। इस फसल को न बहुत गर्म हो और न ही ठण्डी जलवायु आवश्यकता होती है। यह एक लंबे दिन वाला पौधा है। दिन की लंबाई कंद प्याज को प्रभावित करती है, लेकिन बीज उत्पादन पर इसका बहुत कम प्रभाव पड़ता है। यह बीज उत्पादन के लिए दिन-तटस्थ फसल माना जा सकती है।

उद्यान विभाग, श्री करण नरेंद्र कृषि महाविद्यालय, एसकेएनएयू, जोबनेर, जयपुर, राजस्थान

पौध अवस्था में फसल

कंद फसल के और बीज डंठल के शुरुआती विकास के लिए 10 से 15° सेल्सियस होती है। आमतौर पर प्याज की खेती उपजाऊ दोमट मिट्टी जिसमें जीवांश खाद प्रचुर मात्रा में हो व जल निकास की उत्तम व्यवस्था हो, सर्वोत्तम रहती है। भूमि अधिक क्षारीय व अधिक अम्लीय नहीं होनी चाहिये।

कंद बनने, बीज की कटाई और उपचार के दौरान, काफी उच्च तापमान और कम आर्द्रता वांछनीय है।

किस्में: पूसा व्हाइट, कल्याणपुर, रेड राउंड, पूसा-48, पूसा रेड, पूसा माधवी, अर्का निकेतन, अर्का कल्याणी, नासिक रेड, अर्का पीतांबर, पूसा रिद्धि, पटना रेड, एग्रीफाउंड डार्क रेड, एग्रीफाउंड लाइट रेड, बेल्लारी रेड,

रामपुर लोकल आदि उन्नत किस्में हैं।

बीज उत्पादन विधिः व्यावसायिक उपयोग के लिए संकट प्याज के बीज का उत्पादन या तो बल्ब-टू-सीड (कंद से बीज) विधि से, या फिर सीड-टू-सीड (बीज से बीज) विधि से किया जाता है।

बीज उत्पादन की विधियाँः इस विधि में, पहले मौसम की कंद फसल को खेत में सर्दियों के लिए छोड़ दिया जाता है ताकि अगले मौसम में बीज उत्पादित हो सके। इस विधि में आधार बीज की अधिक मात्रा और अपेक्षाकृत शुद्ध आधार बीज की आवश्यकता होती है, क्योंकि खेत में विकसित अवांछित पौधों को हटाना (रोगिंग) कठिन होता है।

कंद से बीज विधिः इस विधि का उपयोग अधिक प्रचलित है, क्योंकि इसमें बीजों की पैदावार अधिक होती है और अगली पीढ़ी के लिए बीज तैयार करने से पहले अवांछित पौधों को हटाना (रोगिंग) आसान होता है। बीज से बीज विधि की तुलना में निम्नलिखित लाभों के कारण, बीज उत्पादन के लिए अधिकतर कंद से बीज उत्पादन विधि का उपयोग किया जाता है।

क) इस विधि में बीज उत्पादन के लिए सही प्रकार और स्वस्थ कंदों के चयन है।

ख) बीज की उपज तुलनात्मक रूप से बहुत अधिक होती है। हालाँकि, बीज से बीज विधि का उपयोग अनुप्युक्त भंडारण गुणवत्ता वाली किस्मों के लिए भी किया जा सकता है।

प्याज फसल में पुष्पण अवस्था

कंदों का चयनः स्वस्थ, रोग मुक्त और मध्यम आकार के ऐसे कंदों का चयन किया जाना चाहिए, जिनमें किस्म की विशिष्ट विशेषताएं मौजूद हों।

कंद का आकार 4-6 सें.मी. व्यास और क्षतिग्रस्त या अलग किस्म के कंदों को हटा देना चाहिए। मैदानी क्षेत्रों में मध्य अक्तूबर से मध्य नवंबर तक और पहाड़ी क्षेत्रों में अप्रैल से जून तक। एक हैक्टर पौध उगाने के लिए 1/20 हैक्टर नर्सरी पर्याप्त है। बीज से बीज विधि में बीज दर 8-10 किलोग्राम प्रति हैक्टर एवं कंद से बीज विधि में 50 - 80 क्विंटल प्रति हैक्टर कंद की आवश्यकता होती है।

बीज उपचारः प्याज बीज उत्पादन में बल्ब उपचार एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। बल्बों को कार्बेण्डाजिम, थीरम एवं कैप्टॉन 2-3 ग्राम प्रति किलोग्राम बल्ब से उपचारित किया जाता है। बल्बों को फफूंदनाशी घोल में 15-20 मिनट तक डुबोकर रखें। इसके बाद छाया में सुखाकर रोपाई करें।

उपचारित बल्बों में सड़न, फफूंदजनित रोग एवं मृदा जनित रोगों से सुरक्षा मिलती है तथा अंकुरण, पौध वृद्धि एवं बीज उत्पादन बेहतर होता है, जिससे उच्च गुणवत्ता वाला बीज प्राप्त किया जा सकता है।

उन्नत विधि से भरपूर उत्पादन

रोपण विधि और अंतरालः चयनित बल्बों को मिट्टी में 3 से 5 सें.मी. गहराई पर 45 × 30 सें.मी. की दूरी पर लगाया जाता है। क्यारियों का आकार सिंचाई के स्रोत पर निर्भर करता है। अंकुरित बल्बों को सीधे लगाया जाता है जबकि अंकुरित न हुए बल्बों में, ऊपरी आधे भाग को हटा देना चाहिए, जिससे डिस्कनुमा तना और जड़ें सुरक्षित रहें। ऊपरी भाग को हटाने से अंकुरण में तेज वृद्धि आती है।

पृथक्करण दूरीः प्याज मुख्यतः परपरागण वाली फसल है जिसमें 93 प्रतिशत तक प्राकृतिक संकरण होता है, लेकिन कुछ स्व-परागण भी होता है। इसका परागण मुख्यतः मधुमक्खियों द्वारा होता है। शुद्ध बीज उत्पादन के लिए, बीज के खेतों को प्याज की अन्य किस्मों और प्रमाणीकरण के लिए आवश्यक शुद्धता आवश्यकताओं को पूरा न करने वाली समान किस्म के खेतों से आधार बीज उत्पादन के लिए कम से कम 1000 मीटर और प्रमाणित बीज उत्पादन के

लिए 500 मीटर की दूरी पर अलग किया जाना चाहिए।

उर्वरक एवं सिंचाई: भूमि तैयार करते समय 20 टन सड़ी हुई गोबर की खाद और रोपण के समय 250 किलोग्राम सुपर फॉस्फेट (एकल) और 45 किलोग्राम पोटेशियम सल्फेट डालें। 250 से 375 किलोग्राम अमोनियम सल्फेट या कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट को पौध वृद्धि के दौरान दो से तीन खुराक में टॉप-ड्रेसिंग के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। सर्दियों में पाक्षिक सिंचाई और गर्म मौसम में साप्ताहिक सिंचाई। वहीं परिपक्वता के दौरान कम सिंचाई करनी चाहिए।

रोगिंग: खेत को खरपतवारों से मुक्त रखें। कंद के अच्छे विकास के लिए बार-बार रोगिंग आवश्यक है। प्याज एक ऐसी फसल है जिसमें बहुत ज्यादा क्रॉस-पॉलिनेशन होता है, इसलिए इसमें हमेशा कीटों द्वारा लाए गए अवांछित परागकणों से दूषित होने की आशंका बनी रहती है, भले ही कितनी भी सावधानी बरती जाए। कंद का रंग, आकार, पत्तियों का प्रकार और बीज के डंठल की ऊँचाई कुछ ऐसे मापदंड हैं जिनका उपयोग करके ऑफ-टाइप (अवांछित) पौधों की पहचान की जाती है। संकर बीज उत्पादन वाले खेतों में, दूषित होने से बचाने के लिए

ड्रिप सिंचाई प्रणाली का उपयोग

फीमेल लाइन में मौजूद उर्वर पौधों को तुरंत हटा दिया जाता है।

कीट एवं रोग नियंत्रण

थ्रिप्स: मैलाथियॉन 50 ईसी 600 से 700 मिलीलीटर प्रति हैक्टर या थायोडानॅ 35 ईसी 600 से 700 मिलीलीटर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें। तीन से चार बार छिड़काव की आवश्यकता होती है।

रोग: प्याज के बीज वाली फसलों में डाउनी मिल्ड्यू सबसे गंभीर रोगों में से एक है। भारत में बीज वाली फसलों के मुख्य रोगों के रूप में पर्पल ब्लॉच और स्टेम्फिलियम लीफ ब्लाइट है।

बीज की कटाई और प्रसंस्करण: कटाई के लिए तैयार बीज की परिपक्वता का संकेत अप्रैल-मई में मिलता है। किस्म के आधार पर, फूल खिलने के लगभग 30-50 दिनों बाद बीज पकते हैं।

प्याज के बीजों की कटाई हाथ या मशीन से की जा सकती है। हाथ से कटाई तब की जाती है जब लगभग 25 प्रतिशत फूलों के गुच्छों में कुछ फल खुले हुए दिखाई दें और काले बीज नजर आने लगें। फूलों के गुच्छों को लगभग 15 सें.मी. लंबे डंठल के साथ काटा जाता है। मशीनों से कटाई की सलाह तब दी जाती है जब 1-3 प्रतिशत फूलों के गुच्छों में पके हुए बीज दिखाई देने लगें।

कटे हुए गुच्छों को थ्रेसिंग से पहले कुछ दिनों तक कैनवस या प्लास्टिक की चादरों पर धूप में सुखाने के लिए ढेर में रखा जाता है। इससे बीज को ठीक से पकने में मदद मिलती है, फिर बीजों को हाथ से थ्रेसिंग करके या लचीली छड़ियों का उपयोग करके कैप्सूल से अलग किया जाता है। बीजों को बीएसएस छलनी से छानकर 6-8% नमी तक सुखाया जाता है और 2-3 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से बाविस्टिन/थीरम से उपचारित किया जाता है।

बीज उपज: औसत बीज उपज 850 से 1000 किलोग्राम प्रति हैक्टर तक होती है।

सारणी: संकर प्याज बीज के न्यूनतम बीज मानक

कारक	स्थापित बीज	प्रमाणित बीज
शुद्ध बीज (मिनी)	98%	98%
निष्क्रिय पदार्थ (अधिकतम)	2%	2%
अन्य फसल बीज (अधिकतम)	5 कि.ग्रा.	10 कि.ग्रा.
खरपतवार के बीज (अधिकतम)	5 कि.ग्रा.	10 कि.ग्रा.
अंकुरण (मिनी)	70%	70%
नमी (अधिकतम)	8%	8%
वाष्परोधी कंटेनर के लिए	6%	6%

प्याज के गुणवत्तापूर्ण संकर बीज का उत्पादन

पोषण से समृद्ध पारंपरिक सब्जियां

नीरज कुमार प्रजापति[1] और **अवनीश चंद्र**[2]

भारतीय कृषि परंपरा में पारंपरिक सब्जियों का विशेष स्थान रहा है। ये देसी सब्जियाँ न केवल पोषण का उत्कृष्ट स्रोत हैं, बल्कि पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। पारंपरिक सब्जियाँ जैसे लौकी, करेला, तोरई, कुंदरू और पत्तेदार हरी सब्जियाँ सूक्ष्म पोषक तत्वों से भरपूर होती हैं। इनमें विटामिन, खनिज, एंटीऑक्सीडेंटस और फाइबर प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। ये सब्जियाँ मधुमेह, उच्च रक्तचाप और पाचन संबंधी समस्याओं के नियंत्रण में सहायक होती हैं। स्थानीय जलवायु में उगने के कारण इनकी पोषण क्षमता भी अधिक होती है। देसी सब्जियाँ स्थानीय मृदा और जलवायु के अनुकूल होती हैं, जिससे इन्हें कम पानी और रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता होती है। ये प्राकृतिक रूप से कीट प्रतिरोधी होती हैं, इसलिए इनके उत्पादन में कीटनाशकों का उपयोग न्यूनतम होता है। इनकी खेती जैव विविधता को बढ़ावा देती है और मृदा की उर्वरता बनाए रखती है। आधुनिकीकरण के दौर में संकर और विदेशी सब्जियों के प्रचलन से पारंपरिक किस्में लुप्त होती जा रही हैं। इन्हें संरक्षित करने के लिए बीज बैंक, जागरूकता अभियान और किसानों को प्रोत्साहन की आवश्यकता है। सरकारी योजनाओं और सामुदायिक प्रयासों से इन सब्जियों को पुनर्जीवित किया जा सकता है, जिससे स्वास्थ्य और पर्यावरण दोनों को दीर्घकालिक लाभ मिलेगा।

आधुनिक कृषि व्यवस्था के विस्तार के साथ ही विश्वभर में जैव विविधता का एक गंभीर संकट उत्पन्न हुआ है। संयुक्त राष्ट्र के खाद्य और कृषि संगठन के अनुसार, पिछली शताब्दी में कृषि फसलों की अनेकों किस्में विलुप्त हो चुकी हैं। यह चिंताजनक स्थिति न केवल हमारी खाद्य सुरक्षा को संकट में डालती है, बल्कि पारिस्थितिकी तंत्र के संतुलन को भी प्रभावित करती है। इस संकट के बीच, पारंपरिक सब्जियों का महत्व पहले से कहीं अधिक बढ़ गया है। ये स्थानीय किस्में सदियों से विशिष्ट भौगोलिक परिस्थितियों में विकसित हुई हैं और अपने क्षेत्र की जलवायु, मिट्टी और कीट-रोगों के प्रति अद्भुत अनुकूलन क्षमता रखती हैं।

भारत में बैंगन की लगभग 500 से अधिक पारंपरिक किस्में, टमाटर की सैकड़ों देसी किस्में, और विभिन्न प्रकार की पत्तेदार सब्जियाँ जैसे चौलाई, बथुआ, कुल्फा और चने का साग हमारी कृषि विरासत का अमूल्य हिस्सा हैं।

पारंपरिक सब्जियों की विशेषता यह है कि वे न केवल पोषण की दृष्टि से समृद्ध होती हैं, बल्कि पर्यावरण के लिए भी अत्यंत लाभकारी सिद्ध होती हैं। ये कम पानी में उगाई जा सकती हैं, रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों की न्यूनतम आवश्यकता रखती हैं, और स्थानीय जैव विविधता को बनाए रखने में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं।

वर्तमान में जब जलवायु परिवर्तन और खाद्य असुरक्षा जैसी चुनौतियाँ विकराल रूप धारण कर रही हैं, पारंपरिक सब्जियों का संरक्षण और प्रचार केवल एक विकल्प नहीं, बल्कि एक आवश्यकता बन गया है।

पोषण समृद्ध

पारंपरिक सब्जियाँ अपनी पोषण सामग्री में आधुनिक संकर किस्मों से कई मायनों में श्रेष्ठ होती हैं। इन सब्जियों में प्रोटीन,

[1]उद्यानिकी विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश, [2]कीट विज्ञान विभाग, राजकीय महाविद्यालय, जक्खिनी, वाराणसी, उत्तर प्रदेश

विटामिन, खनिज और एंटीऑक्सीडेंट की मात्रा प्रायः अधिक पाई जाती है।

पर्यावरणीय योगदान

पारंपरिक सब्जियाँ पर्यावरण संरक्षण में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इनकी जलवायु अनुकूलन क्षमता, संसाधन दक्षता और जैव विविधता संरक्षण में योगदान इन्हें टिकाऊ कृषि का आधार बनाता है।

जलवायु अनुकूलनः पारंपरिक सब्जियों की सबसे बड़ी शक्ति उनकी स्थानीय जलवायु परिस्थितियों के प्रति अनुकूलन क्षमता है। राजस्थान की खेजड़ी फली, गुजरात की सूरती पपड़ी, और उत्तर प्रदेश की देसी कद्दू जैसी किस्में अपने-अपने क्षेत्रों की विशिष्ट जलवायु में बिना किसी बाहरी सहायता के उग जाती हैं।

सूखा सहिष्णुता पारंपरिक किस्मों की विशेष पहचान है। कुल्फा, चौलाई और देसी तोरई जैसी सब्जियाँ न्यूनतम सिंचाई में भी अच्छी उपज देती हैं। ये किस्में संकर किस्मों की तुलना में 30-40 प्रतिशत कम पानी में भी सफलतापूर्वक उगाई जा सकती हैं। जलवायु परिवर्तन के दौर में, पारंपरिक किस्मों की आनुवंशिक विविधता भविष्य के लिए एक बीमा नीति है।

जल-मृदा संरक्षणः पारंपरिक सब्जियाँ मृदा स्वास्थ्य को बनाए रखने में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। दलहनी सब्जियाँ जैसे सेम, लोबिया और बाकला वायुमंडलीय नाइट्रोजन को मिट्टी में स्थिर करती हैं, जिससे रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता कम हो जाती है। दलहनी फसलें प्रति हैक्टर लगभग 50-100 किलोग्राम नाइट्रोजन मिट्टी में जोड़ती हैं।

गहरी जड़ों वाली पारंपरिक किस्में मृदा संरचना को सुधारती हैं और जल धारण क्षमता बढ़ाती हैं। उदाहरण के लिए, देसी लौकी और कद्दू की जड़ें दो मीटर से अधिक गहराई तक जाती हैं, जो मिट्टी की निचली परतों से पोषक तत्व ऊपर लाती हैं और मृदा को प्राकृतिक रूप से उपजाऊ बनाती हैं।

जल संरक्षण के दृष्टिकोण से भी पारंपरिक सब्जियाँ अधिक कुशल हैं। मल्चिंग प्रभाव वाली फैलने वाली किस्में जैसे लौकी, कद्दू और खीरा मिट्टी को ढककर वाष्पीकरण को कम करती हैं। यह प्राकृतिक मल्चिंग सिंचाई जल की आवश्यकता को 25-30 प्रतिशत तक कम कर सकती है।

जैव विविधताः पारंपरिक सब्जियों की खेती जैव विविधता को बढ़ावा देती है। विभिन्न किस्मों की एक साथ खेती करने से कीट-पतंगों, मित्र कीटों और सूक्ष्मजीवों की विविधता बनी रहती है। यह विविधता प्राकृतिक कीट नियंत्रण को सुगम बनाती है। पारंपरिक सब्जियों के फूल परागणकर्ता कीटों जैसे मधुमक्खियों, तितलियों और अन्य

बैंगन है एटीऑक्सीडेंट का समृद्ध स्रोत

सारणीः सब्जियों की पारंपरिक किस्मों में पोषण मान

सब्जी	**पोषक तत्व**	**देसी किस्में (प्रति 100 ग्रा.)**	**आधुनिक संकर किस्में (प्रति 100 ग्रा.)**	**प्रमुख स्वास्थ्य लाभ**
बथुआ	प्रोटीन	4.2 ग्राम	-	एनीमिया रोकथाम, हड्डी मजबूती
	आयरन	3.8 मिलीग्राम	-	रक्त में हीमोग्लोबिन वृद्धि
चौलाई	प्रोटीन	4.6 ग्राम	2.8-3.2 ग्राम	मांसपेशी निर्माण, बाल स्वास्थ्य
	कैल्शियम	340 मिलीग्राम	220-260 मिलीग्राम	हड्डी घनत्व, दांत मजबूती
कुल्फा	ओमेगा-3	300-400 मिलीग्राम	-	हृदय स्वास्थ्य, मस्तिष्क विकास
टमाटर	लाइकोपीन	8-10 मिलीग्राम	4-6 मिलीग्राम	कैंसर रोकथाम, त्वचा सुरक्षा
बैंगन	एंथोसायनिन	उच्च	मध्यम	एंटीऑक्सीडेंट, स्मृति सुधार
गाजर	बीटा-कैरोटीन	10,500 माइक्रोग्राम	8, 500 माइक्रोग्राम	दृष्टि सुधार, रोग प्रतिरक्षा बढ़ाना
करेला	कैरोटिन	180-220 मिलीग्राम	120-150 मिलीग्राम	रक्त शर्करा नियंत्रण, मधुमेह प्रबंधन
सरसों साग	विटामिन के	450 माइक्रोग्राम	280-320 माइक्रोग्राम	रक्त थक्का बनना, हड्डी स्वास्थ्य
मेथी	फाइबर	24.6 ग्राम	18-20 ग्राम	पाचन स्वास्थ्य, कोलेस्ट्रॉल कम करना
पालक	आयरन	2.8 मिलीग्राम	2.1-2.4 मिलीग्राम	ऊर्जा उत्पादन, थकान कम करना
लौकी	पोटेशियम	150 मिलीग्राम	110-130 मिलीग्राम	रक्तचाप नियंत्रण, हृदय स्वास्थ्य
भिंडी	फोलेट	88 माइक्रोग्राम	60-70 माइक्रोग्राम	गर्भावस्था स्वास्थ्य, डीएनए संश्लेषण
तोरई	विटामिन सी	18 मिलीग्राम	12-14 मिलीग्राम	प्रतिरक्षा तंत्र, घाव भरना
परवल	विटामिन ए	2380 आईयू	1600-1800 आईयू	त्वचा स्वास्थ्य, श्लेष्मा झिल्ली
कुंदरू	फाइटोन्यूट्रिएंट्स	उच्च	मध्यम	सूजन कम करना, रोग प्रतिरोध
खीरा	सिलिका	28 मिलीग्राम	18-22 मिलीग्राम	त्वचा लोच, बाल स्वास्थ्य
चना साग	प्रोटीन	5.4 ग्राम	-	स्वस्थ मांसपेशी, तृप्ति
सेम	फोलेट	394 माइक्रोग्राम	280-320 माइक्रोग्राम	लाल रक्त कोशिका निर्माण

लाभकारी कीटों को आकर्षित करते हैं।

पारंपरिक किस्मों वाले खेतों में परागणकर्ताओं की संख्या और विविधता दोनों अधिक होती हैं। इसके अलावा, पारंपरिक सब्जियों के साथ-साथ कई जंगली और सहजात पौधे भी उगते हैं, जो पारिस्थितिकी तंत्र को समृद्ध बनाते हैं। ये पौधे कीटों के शिकारियों को आश्रय और आहार प्रदान करते हैं, जिससे कीटनाशकों की आवश्यकता कम हो जाती है।

संरक्षण

पारंपरिक सब्जियों के संरक्षण और प्रचार के लिए बहुस्तरीय रणनीति की आवश्यकता है, जिसमें अनुसंधान, सामुदायिक भागीदारी और नीतिगत समर्थन शामिल हो।

अनुसंधान और दस्तावेजीकरण: पारंपरिक सब्जियों के संरक्षण के लिए सबसे पहले उनकी व्यापक सूची और वर्गीकरण आवश्यक है। देश भर से पारंपरिक बीजों को एकत्र कर उन्हें जीन बैंकों में संरक्षित किया जा रहा है। आणविक स्तर पर शोध की आवश्यकता है ताकि पारंपरिक किस्मों की विशिष्ट विशेषताओं को समझा जा सके।

जीनोमिक्स और मार्कर-असिस्टेड सिलेक्शन जैसी आधुनिक तकनीकों का उपयोग कर पारंपरिक किस्मों के महत्वपूर्ण जीनों की पहचान की जा सकती है। पोषण मूल्यांकन अध्ययन भी आवश्यक हैं। प्रत्येक पारंपरिक सब्जी के पोषक तत्वों का व्यापक विश्लेषण किया जाना चाहिए और इस जानकारी को किसानों और उपभोक्ताओं तक पहुँचाया जाना चाहिए।

कृषि-पारिस्थितिकी अनुसंधान से यह समझा जा सकता है कि विभिन्न पारंपरिक सब्जियाँ किस प्रकार एक-दूसरे के साथ और अपने पर्यावरण के साथ अंत:क्रिया करती हैं। यह जानकारी मिश्रित खेती और फसल चक्र की बेहतर योजना बनाने में सहायक होगी।

सामुदायिक भागीदारी

पारंपरिक सब्जियों का वास्तविक संरक्षण तभी संभव है जब स्थानीय समुदाय इसमें सक्रिय रूप से शामिल हों। कई राज्यों में किसान बीज बैंक और बीज विनिमय कार्यक्रम सफलतापूर्वक चल रहे हैं, जहाँ किसान पारंपरिक बीजों का आदान-प्रदान करते हैं। महिला स्वयं सहायता समूहों ने पारंपरिक सब्जियों के संरक्षण में विशेष भूमिका निभाई है। उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ में महिला किसान पारंपरिक बीजों को न केवल सुरक्षित रख रही हैं, बल्कि उन्हें उगाकर स्थानीय बाजारों में बेच भी रही हैं।

पोषण वाटिकाओं (न्यूट्रिशन गार्डन) का प्रचार एक प्रभावी रणनीति है। घरों के आसपास छोटे भूखंडों में विभिन्न पारंपरिक सब्जियाँ उगाने से परिवारों को पोषण सुरक्षा मिलती है और बीजों का संरक्षण भी होता है। स्कूली पाठ्यक्रम में पारंपरिक सब्जियों के बारे में जानकारी शामिल की जानी चाहिए। बच्चों को स्कूल बगीचों में इन सब्जियों को उगाने का अनुभव देना भविष्य की पीढ़ी को जागरूक बनाने का सशक्त माध्यम है।

पारंपरिक सब्जियाँ हमारी कृषि और खाद्य प्रणाली के लिए अमूल्य संपत्ति हैं। ये न केवल पोषण सुरक्षा प्रदान करती हैं, बल्कि पर्यावरण संरक्षण, जलवायु अनुकूलन और जैव विविधता संवर्धन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इनकी स्थानीय अनुकूलन क्षमता, कम संसाधन आवश्यकता और उच्च पोषण मूल्य इन्हें टिकाऊ खाद्य प्रणाली का आधार बनाते हैं।

वर्तमान समय में जब विश्व जलवायु परिवर्तन, जल संकट और कुपोषण जैसी गंभीर चुनौतियों का सामना कर रहा है, पारंपरिक सब्जियों का महत्व और भी बढ़ जाता है। इन सब्जियों का संरक्षण और प्रचार केवल अतीत की रक्षा नहीं, बल्कि भविष्य के लिए एक सुरक्षित खाद्य प्रणाली का निर्माण है। ■

देसी सब्जियों से जैव विविधता का संरक्षण

उदाहरण 1

उत्तराखंड में पहाड़ी सब्जियाँ: उत्तराखंड के पहाड़ी क्षेत्रों में पारंपरिक सब्जियों जैसे गहत (कुल्थी), भट्ट (काला सोयाबीन) और विभिन्न प्रकार की पहाड़ी साग सब्जियों की खेती सदियों से की जा रही है। ये किस्में न केवल ढलान वाली भूमि पर बिना मिट्टी के कटाव के उगाई जा सकती हैं, बल्कि सीमित वर्षा में भी अच्छी उपज देती हैं। स्थानीय किसानों ने पाया है कि इन पारंपरिक सब्जियों की खेती करने से भूस्खलन का संकट कम होता है क्योंकि इनकी जड़ें मिट्टी को बांधे रखती हैं। गैर-सरकारी संगठनों और कृषि विश्वविद्यालयों के सहयोग से इन किस्मों के बीज बैंक स्थापित किए गए हैं, जिससे स्थानीय जैव विविधता का संरक्षण हो रहा है।

उदाहरण 2

ओडिशा की जनजातीय सब्जियाँ: ओडिशा के आदिवासी क्षेत्रों में सागू (टैपियोका पत्ती), कंसारी (खेसरी साग) और विभिन्न प्रकार के जंगली साग पारंपरिक रूप से उगाए और खाए जाते हैं। ये सब्जियाँ बिना किसी रासायनिक आदानों के वनों के किनारे और बंजर भूमि पर उगाई जाती हैं। एम.एस. स्वामीनाथन रिसर्च फाउंडेशन द्वारा किए गए अध्ययन में पाया गया कि इन पारंपरिक सब्जियों की खेती से स्थानीय पारिस्थितिकी तंत्र में 40 प्रतिशत अधिक प्रजातियों की उपस्थिति देखी गई। इसके साथ ही, इन क्षेत्रों में मृदा कार्बनिक पदार्थ की मात्रा भी अधिक पाई गई, जो जलवायु परिवर्तन शमन में योगदान करती है।

हरी सब्जियों का खाद्य प्रणालियों में अहम योगदान

अनूठा

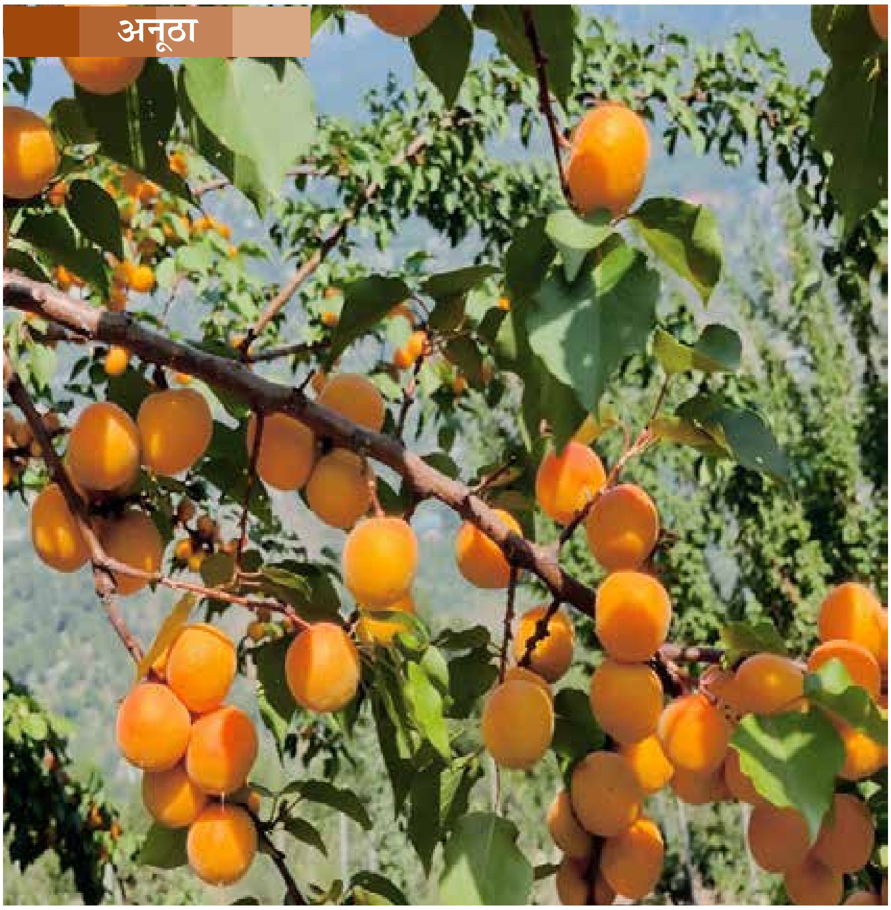

बहुउपयोगी पारंपरिक फल है खुमानी

दुर्गा प्रसाद भंडारी[1], **इंद्र देव**[3], **प्रमोद कुमार शर्मा**[2] और **अरूण नेगी**[1]

खुमानी (प्रूनस अर्मेनियाका एल.) एक महत्वपूर्ण फल वृक्ष है, जिसे स्टोन फ्रूट के रूप में भी जाना जाता है। इसकी खेती विश्व के अनेक देशों जैसे तुर्की, इटली, ग्रीस, स्पेन, संयुक्त राज्य अमेरिका तथा फ्रांस में व्यापक रूप से की जाती है। भारत में यह मुख्यत: हिमालय के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्रों के ठंडे मरुस्थलीय भागों में प्राकृतिक रूप से पाया जाता है। जम्मू-कश्मीर, लद्दाख, हिमाचल प्रदेश तथा उत्तराखंड के 2,000-2,500 मीटर की ऊँचाई वाले क्षेत्रों में यह फल जंगली रूप से उगता है। खुमानी का फल स्थानीय भाषा में 'चुली' के नाम से प्रसिद्ध है। इसके फल गोल से अंडाकार तथा हल्के रोएँदार होते हैं। पकने पर इनका रंग पीला अथवा लालिमा लिए पीला हो जाता है और स्वाद हल्का खट्टा होता है। क्षेत्र की ऊँचाई एवं जलवायु के अनुसार इसके फल मई से अगस्त के बीच पकते हैं। एक स्वस्थ एवं पूर्ण विकसित चुली (खुमानी) का वृक्ष प्रतिवर्ष लगभग 35-75 कि.ग्रा. फल उत्पादन कर सकता है।

पोषण की दृष्टि से चुली अत्यंत महत्वपूर्ण फल है। इसमें एंटीऑक्सीडेंट, विटामिन तथा विभिन्न आवश्यक खनिज प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं, जो विशेष रूप से नेत्र स्वास्थ्य के लिए लाभकारी माने जाते हैं। साथ ही इसमें पर्याप्त मात्रा में आहार रेशा (फाइबर) होने के कारण यह पाचन क्रिया को बेहतर बनाता है तथा कब्ज की समस्या से राहत दिलाने में सहायक होता है।

चुली का वृक्ष समशीतोष्ण क्षेत्रों में उगाया जाता है। इसके लिए ठंडी सर्दियों तथा गर्मियों एवं वसंत ऋतु के प्रारंभ में मध्यम तापमान की आवश्यकता होती है। उपोष्णकटिबंधीय जलवायु वाले क्षेत्रों में इसकी सफल खेती नहीं की जा सकती। चुली ड्रूप वर्ग का फल है, जिसमें एक ही बीज होता है। आम, आलूबुखारा, चेरी और आड़ू भी इसी वर्ग के फल हैं। यह कार्बोहाइड्रेट, खनिज, फाइबर और विटामिन का अच्छा स्रोत है। इसकी गिरी का उपयोग चीन में खांसी, कब्ज और दमा की औषधियाँ बनाने में भी किया जाता है।

खुमानी स्वाद में मीठी होती है, जबकि चुली खट्टी-मीठी होती है। दोनों के वृक्ष भी लगभग समान होते हैं। चुली को ताजा तथा सूखे फल, दोनों रूपों में खाया जाता है। स्थानीय किन्नौरी भाषा में इसे 'चूल' कहा जाता है। किन्नौर के दो उत्पाद चुली तेल और काला जीरा को चेन्नई स्थित भौगोलिक संकेत (जीआई) रजिस्ट्री से जीआई टैग भी प्राप्त है।

चुली अत्यधिक नाशवान प्रकृति का फल है। यह शर्करा और विटामिन ए का अच्छा स्रोत है तथा इसमें थायमिन और लौह तत्व भी पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं। ताजा चुली में लगभग 86 प्रतिशत खाद्य भाग होता है, जिसमें कुल ठोस पदार्थ 12.4-16.7 प्रतिशत, अघुलनशील ठोस 2.1-3.1 प्रतिशत, मैलिक अम्ल 0.7-2.2 प्रतिशत तथा कुल शर्करा 5.3-8.6 प्रतिशत होती है।

उच्च अम्लता और कम शर्करा के कारण यह प्रत्यक्ष उपभोग के लिए अधिक उपयुक्त नहीं मानी जाती। वर्तमान में इसका व्यावसायिक स्तर पर सीमित प्रसंस्करण होता है, हालांकि इससे सॉस और चटनी बनाने के प्रयासों में उत्साहजनक परिणाम प्राप्त हुए हैं। जंगली खुमानी के फलों से 22-38 प्रतिशत गुठलियाँ प्राप्त होती हैं, जिनकी गिरी का

विशेष

चुली की विशेषता यह है कि इसके लगभग सभी भाग किसी न किसी रूप में उपयोगी हैं। फल की गुठली का कठोर आवरण स्थानीय क्षेत्रों में ईंधन के रूप में प्रयुक्त होता है, जबकि उसके भीतर स्थित बीज का उपयोग सीधे खाद्य उत्पाद के रूप में तथा उससे मूल्यवान तेल निकालने के लिए किया जाता है। फल का गूदा ताजा एवं प्रसंस्करित रूप में खाया जाता है तथा कई पर्वतीय क्षेत्रों में इससे पारंपरिक स्थानीय मादक पेय भी तैयार किया जाता है। अपनी बहुउपयोगिता, पोषण मूल्य और स्थानीय आजीविका में योगदान के कारण जंगली खुमानी हिमालयी क्षेत्रों की एक महत्वपूर्ण जैविक संपदा मानी जाती है।

[1]वैज्ञानिक, [2]सह-निदेशक और प्रमुख, कृषि विज्ञान केंद्र, किन्नौर, हिमाचल प्रदेश 172107, [3]निदेशक, प्रसार शिक्षा निदेशालय, डॉ. वाई एस परमार औद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, नौणी, सोलन, हिमाचल प्रदेश - 173 220

उपयोग पेस्ट, कन्फेक्शनरी उत्पादों तथा खुमानी जैम में मिलावट के रूप में किया जा सकता है।

चुली के बीज से प्राप्त तेल का उपयोग स्थानीय जनजातियाँ लंबे समय से आहार, मालिश और घरेलू उपचारों में करती रही हैं। इस प्राकृतिक उत्पाद को बढ़ावा देने के लिए हिमाचल प्रदेश सरकार ने भौगोलिक संकेत (जीआई) अधिनियम, 1999 के तहत चुली तेल का पंजीकरण कर उसे पंजीकरण संख्या 467 प्रदान की है। चुली का उत्पादन मुख्यतः किन्नौर जिले में होता है। यद्यपि इसकी खेती शिमला और लाहौल-स्पीति में भी की जाती है, फिर भी औषधीय एवं हर्बल गुणों तथा बेहतर बाजार मूल्य के कारण इसकी पहचान मुख्य रूप से किन्नौर से ही जुड़ी हुई है।

मौसम उपयुक्त जलवायु

चुली को ठंडी जलवायु की आवश्यकता होती है तथा इसकी खेती समुद्र तल से लगभग 3,000 मीटर तक की ऊँचाई वाले शुष्क समशीतोष्ण एवं शीतोष्ण क्षेत्रों में की जाती है। गर्मियों में समशीतोष्ण जलवायु तथा लंबी, ठंडी सर्दियाँ इसके अच्छे फलन के लिए अनुकूल होती हैं। वृद्धि अवधि के दौरान इसे लगभग 100 सें.मी. समान रूप से वितरित वार्षिक वर्षा की आवश्यकता होती है।

उपयोगी तेल

चुली के तेल में ओमेगा-3, ओमेगा-6, ओमेगा-9, आवश्यक वसीय अम्ल, विटामिन तथा एंटीऑक्सीडेंट पाए जाते हैं। इसे पारंपरिक कोल्ड-प्रेस विधि से निकाला जाता है। स्थानीय स्तर पर इसका उपयोग खाद्य तेल, मालिश तथा पारंपरिक उपचारों में किया जाता है। यह त्वचा के पोषण एवं हृदय स्वास्थ्य के लिए लाभकारी माना जाता है ।

खुमानी के शुष्क फल

मृदा: चुली की खेती विभिन्न प्रकार की मृदा में की जा सकती है, परंतु अच्छी जल निकासी वाली, गहरी तथा कार्बनिक पदार्थों से समृद्ध मृदा इसकी वृद्धि एवं उत्पादन के लिए सर्वोत्तम होती है।

मृदा का पीएच 6.0-6.8 उपयुक्त माना जाता है। हालांकि, लद्दाख और किन्नौर में इसे कम उर्वरता वाली, अच्छी जल निकासी वाली रेतीली मृदा में भी सफलतापूर्वक उगाया जाता है। चुली का पेड़ प्राकृतिक रूप से तथा बीज द्वारा भी उगता है। किन्नौर जिले में इसे प्रायः बागों की मेड़ों या किनारों पर लगाया जाता है, ताकि सेब की मुख्य फसल प्रभावित न हो तथा अतिरिक्त आय के लिए चुली के फल एवं अन्य उत्पाद प्राप्त हो सकें। साथ ही, यह वायु अवरोधक का भी कार्य करता है।

भूमि की तैयारी: रोपण से पहले 3 × 3 फीट के गड्ढे तैयार करें तथा उनमें एक वर्ष पुराने पौधों को अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद मिलाकर लगाएँ। मृदा की नमी बनाए रखने तथा खरपतवार नियंत्रण के लिए पौधों के चारों ओर 10-15 सें.मी. मोटी घास की मल्च बिछाएँ। मुख्य खेत में पौधे लगाने के तुरंत बाद सिंचाई अवश्य करें।

सिंचाई: चुली में विशेष रूप से अप्रैल-मई के दौरान फल विकास अवस्था में सिंचाई आवश्यक होती है। सिंचाई की आवृत्ति मृदा के प्रकार, पेड़ की आयु तथा मौसम पर निर्भर करती है। अधिक गर्म एवं शुष्क मौसम (मई-जून) में 8-10 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करें। भारी वर्षा की स्थिति में जल निकासी का उचित प्रबंधन करें, क्योंकि चुली के पेड़ जलभराव के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होते हैं।

मूल्य संवर्धन

चुली से किन्नौर के निम्न अनेक पारंपरिक व्यंजन एवं मूल्यवर्धित उत्पाद तैयार किए जाते हैं:

चूल फटिंग: यह किन्नौर का पारंपरिक व्यंजन है। इसे बनाने के लिए सूखी चुली को एक दिन पानी में भिगोकर हाथों से रगड़कर गुठली अलग की जाती है। गूदे को पानी के साथ 30-45 मिनट तक धीमी आँच पर पकाया जाता है। मिश्रण को गाढ़ा करने के लिए बथुआ का आटा मिलाया जाता है। गाढ़ा होने पर यह सेवन के लिए तैयार हो जाता है। जनजातीय क्षेत्रों में इसका उपयोग पारंपरिक औषधीय आहार के रूप में भी किया जाता है।

रेमोकन: चुली की गिरी से बनने वाले इस स्थानीय व्यंजन में गिरी को पीसकर 2-3 लीटर पानी में उबाला जाता है। कड़वापन कम होने पर स्वादानुसार नमक तथा चाइना सरसों, मूली और फफारे/ओगले के पत्ते मिलाकर पकाया जाता है। इसे चावल या रोटी के साथ खाया जाता है।

तेल निष्कर्षण विधि: चुली के फलों को 15-20 दिन सुखाकर एक दिन पानी में भिगोया जाता है। हाथों से रगड़कर गुठलियाँ अलग कर 3-4 दिन सुखाई जाती हैं। गुठली तोड़कर गिरी निकालकर 6-7 दिन धूप में सुखाई जाती है। इसके बाद कोल्हू से पेरकर तेल एवं खली प्राप्त की जाती है। मीठी गिरी का उपयोग स्थानीय परंपराओं में तथा कड़वी गिरी का उपयोग मुख्यतः तेल निकालने के लिए किया जाता है।

गिरी से बनी माला: किन्नौर में चुली की गिरी से पारंपरिक मालाएँ भी बनाई जाती हैं। इसके लिए सूखी चुली को पानी में भिगोकर हाथों से गूदा अलग किया जाता है। गुठलियों को 10-15 मिनट गर्म पानी में उबालने के बाद सावधानीपूर्वक तोड़कर गिरी निकाली जाती है। इसके बाद गिरी को सुई की सहायता से धागे में पिरोकर माला तैयार की जाती है। इन मालाओं का उपयोग किन्नौर में विवाह एवं अन्य पारंपरिक समारोहों में किया जाता है। ■

कटहल की उन्नत खेती

उपेन्द्र यादव[1], **विवेक कुमार त्रिपाठी**[2] और **स्वरूप मणि**[1]

कटहल एक महत्वपूर्ण फलदार वृक्ष है, जिसे गर्म और आर्द्र जलवायु वाले क्षेत्रों में व्यापक रूप से उगाया जाता है। यह स्वादिष्ट, सुगंधित और पोषक तत्वों से भरपूर फल है। भारत में इसे पारंपरिक रूप से घरों के आंगन, बगीचों और खेतों की मेड़ों पर लगाया जाता रहा है। इसे "गरीबों का फल" भी कहा जाता है, क्योंकि यह सस्ता, सुलभ और बहुउपयोगी होता है। इसके कोमल फलों का उपयोग सब्जी के रूप में तथा पके फलों का सेवन ताजे फल, जूस, जैम और अचार के रूप में किया जाता है। कटहल, विश्व का सबसे बड़ा फल माना जाता है। इसे बंगाली में कंथाल, तमिल में पला, अंग्रेजी में जैकफ्रूट, गुजराती में फणस और मलयालम में चक्का कहा जाता है। यह उष्णकटिबंधीय फल मोरेसी कुल से संबंधित है। इसका जीनोम चतुर्गुणित $(2n = 4^{\circ} = 56)$ माना जाता है और इसकी उत्पत्ति भारत के पश्चिमी घाट के वर्षा वनों से मानी जाती है।

कटहल के प्रमुख उत्पादक देशों में बांग्लादेश, म्यांमार, थाईलैंड, वियतनाम, चीन, फिलीपींस, इंडोनेशिया, मलेशिया और श्रीलंका शामिल हैं। विश्व में भारत कटहल का सबसे बड़ा उत्पादक देश है। देश में ओडिशा इसका प्रमुख उत्पादक राज्य है, जबकि केरल, असोम, त्रिपुरा, पश्चिम बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश और दक्षिण भारत के अन्य राज्यों में भी इसकी खेती बड़े पैमाने पर की जाती है। कटहल भारतीय कृषि और संस्कृति में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

कटहल के कच्चे फलों का उपयोग सब्जी के रूप में और पके फलों का उपयोग ताजे फल के रूप में किया जाता है। कटहल का वृक्ष वर्ष में एक बार फल देता है।

उन्नत किस्में

स्थानीय चयनित किस्मों में गुलाबी (गुलाब की आदि वाला), चम्पा (चंपक जैसा स्वाद) और हजारी (बड़ी संख्या में फल देने वाली)। हैं। रुद्राक्षी में सामान्य पुमेलो के आकार के फल होते हैं, जिनका छिलका चिकना होता है और उनमें कम कांटे होते हैं, जबकि सिंगापुर (सीलोन जैक) सीलोन से लाई गई अत्यधिक अगेती किस्म है। कभी-कभी यह सितम्बर और दिसम्बर के बीच हल्की ऑफ-सीजन फसल भी उत्पादित करती है। बड़े फलों और उत्कृष्ट गूदे वाली किस्में NJT-1, NJT-2, NJT-3 और NJT-4 जैसे नए चयन फल के रूप में खाने के लिए उपयुक्त हैं, जबकि पतले छिलके वाले छोटे से मध्यम आकार के फलों वाली NJC-1, NJC-2 और NJC-3 सब्जी के लिए काफी उपयोगी हैं। नगालैंड कटहल उत्तर-पूर्व भारत में लोकप्रिय किस्म है, जो स्वाद में लाजवाब होती है। दक्षिण भारत की प्रमुख किस्में-बरिका, कूझा, नवरिक्का, टीएनएयू से विकसित किस्में - PLR-1, PPI जैक और PLR(J)-2 आदि हैं।

---

[1]शोध छात्र, फल विज्ञान विभाग; [2]अधिष्ठाता, उद्यान महाविद्यालय एवं विभागाध्यक्ष, फल विज्ञान विभाग, चंद्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर (उत्तर प्रदेश)

सामान्यत: फूल नवंबर से मध्य फरवरी तक आते हैं, जो जलवायु, स्थान और किस्म पर निर्भर करते हैं। कोमल (कच्चे) फल बाजार में मार्च से अगस्त तक उपलब्ध रहते हैं, जबकि फल जून-जुलाई में पकना प्रारंभ करते हैं।

महत्व

कटहल एक बहुउद्देश्यीय फल है जो आहार, लकड़ी, ईंधन, चारा, औषधीय और औद्योगिक उत्पाद भी प्रदान करता है। कटहल का प्राथमिक आर्थिक उत्पाद फल है, जिसका उपयोग अपरिपक्व और परिपक्व दोनो अवस्थाओं में किया जाता है। फल का गूदा मीठा और स्वादिष्ट होता है और इसे मिठाई या सिरप के रूप में संरक्षित करके उपयोग किया जाता है। फलों और बीजों को भी आहार और अन्य उत्पादों के लिए विभिन्न रूप से संसाधित किया जाता है। पाक-कला में, फल के गूदे से विभिन्न प्रकार की करी के अलावा चटनी और पेस्ट सहित विभिन्न स्थानीय स्वादिष्ट व्यंजन बनाए जाते है। इसके अतिरिक्त कटहल का उपयोग पारंपरिक चिकित्सा (पत्तियों, छाल, पुष्पगुच्छ, बीज और लेटेक्स) में भी किया जाता है।

कटहल एक पौष्टिक फल है जो विटामिन ए, बी और सी, पोटेशियम, कैल्शियम, आयरन, प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेट से भरपूर है। कार्बोहाइड्रेट के उच्च स्तर के कारण कटहल कुछ क्षेत्रों में खाद्यान्न कमी के समय अन्य स्थिर खाद्य उत्पादों का पूरक बन जाता है।

कटहल से बना पौष्टिक पेय

जलवायु एवं मृदा

कटहल को उष्णकटिबंधीय एवं उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में उगाया जाता है, जहाँ तापमान लगभग 22-35° तथा वार्षिक वर्षा 100-240 सें.मी. होती हो। इसे आर्द्र पहाड़ी ढलानों पर 1500 मीटर की ऊँचाई तक भी उगाया जा सकता है। लंबे समय तक सूखा या जलभराव की स्थिति इसकी वृद्धि और विकास के लिए अनुकूल नहीं होती।

कटहल की खेती के लिए गहरी, जलोढ़, रेतीली या दोमट मिट्टी सबसे उपयुक्त होती है, जिसका पीएच मान 6.0-7.5 के बीच हो तथा जल-निकास की उचित व्यवस्था हो। केरल में कटहल को घरों के आँगन में एक महत्वपूर्ण वृक्ष के रूप में तथा कॉफी बागानों में छायादार वृक्ष के रूप में व्यापक रूप से उगाया जाता है।

प्रवर्धन: कटहल में व्यावसायिक प्रवर्धन के लिए दक्षिण भारत में इनआर्चिंग सर्वाधिक प्रचलित विधि है। इसके लिए आर्टोकार्पस हिर्सुटस को मूलवृत्त के रूप में उपयोग किया जाता है। इसमें युवा मूलवृंत्त को मातृ पौधे से बाँधकर मातृ पौधे की चयनित शाखा से ग्राफ्ट कर दिया जाता है।

सामान्यत: कटहल का प्रवर्धन बीज द्वारा भी किया जाता है। यह बहुत सरल एवं सस्ती विधि है। चूँकि बीज बड़े होते हैं, तेजी से बढ़ते हैं और उनकी जड़ प्रणाली रोपाई के दौरान क्षति के प्रति संवेदनशील होती है, इसलिए खेत में सीधे बीज बोने से सर्वोत्तम परिणाम मिलते हैं।

बाग की स्थापना: गर्मी के महीनों (सामान्यत: मई-जून) में 10-12 मीटर की दूरी पर 1×1×1 मीटर आकार के गड्ढे खोदे जाते हैं। मानसून की पहली वर्षा के बाद गड्ढों को पुन: भरा जाता है। प्रत्येक गड्ढे की मिट्टी में लगभग 30 कि.ग्रा. अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद मिलाकर गड्ढा भर दिया जाता है। पौधों को कीटों के प्रकोप से बचाने के लिए गड्ढे में क्लोरोपाइरीफॉस का प्रयोग किया जाता है। जलभराव से बचाने के लिए मिट्टी को अच्छी तरह दबा दिया जाता है। ग्राफ्ट या बीजू पौधे लगाने का उपयुक्त समय जून से अगस्त है।

देखभाल: युवा पौधों को बकरियों और मवेशियों से बचाना चाहिए। प्रारम्भिक अवस्था में पौधों की अच्छी वृद्धि एवं विकास के लिए

रोग एवं कीट नियंत्रण

गुलाबी रोग: यह पश्चिमी तट और नीलगिरी पहाड़ियों में कटहल में लगने वाला एक गंभीर रोग है। इस रोग में पत्तियों की निचली सतह पर गुलाबी धब्बे तथा तने पर गुलाबी पाउडर दिखाई देता है। इसके प्रबंधन के लिए बोर्डो मिश्रण या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 0.2% का छिड़काव करना चाहिए।

पत्ती धब्बा (फिलोस्टिक्टा आर्टोकार्पिना): यह कटहल का एक सामान्य रोग है। इसमें पत्तियों पर गहरे भूरे रंग के धब्बे बनते हैं, जो बाद में धूसर-भूरे से ईंट जैसे लाल रंग के हो जाते हैं। इसके नियंत्रण के लिए कार्बेण्डाजिम (0.1%) या मैंकोजेब (0.3%) का प्रयोग करना चाहिए।

राइजोपस फल सड़न: यह पुष्प एवं फल सड़न का कारण बनता है, जिससे लगभग 15-32% तक फसल हानि हो सकती है। इसके प्रबंधन के लिए बोर्डो मिश्रण (0.5%) या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.2%) का पर्णीय छिड़काव करें।

कटहल में तना छेदक, मिलीबग, एफिड आदि कीटों से बचाव के लिए जैविक एवं रासायनिक दोनों उपाय अपनाने चाहिए।

कटहल का अचार

गर्मियों में हाथ से सिंचाई करना आवश्यक है। ठंडे क्षेत्रों में पहले कुछ वर्षों तक पाले से बचाव करना पड़ता है।

पौधों की अच्छी वृद्धि के लिए नियमित निराई-गुड़ाई और मल्चिंग आवश्यक है। फल तुड़ाई के बाद फल से जुड़े पुष्पवृन्त और टहनियों की छंटाई कर देनी चाहिए, जिससे अगले वर्ष अच्छी फलत हो सके।

खाद एवं उर्वरक प्रयोग: कटहल के पौधों के लिए जैविक खाद जैसे गोबर की सड़ी खाद तथा रासायनिक उर्वरक जैसे यूरिया, सिंगल सुपर फॉस्फेट और म्यूरेट ऑफ पोटाश का उपयोग किया जाता है। प्रत्येक पौधे को प्रति वर्ष 20-25 कि.ग्रा. गोबर की सड़ी खाद, 100 ग्रा. यूरिया, 200 ग्रा. सिंगल सुपर फॉस्फेट तथा 100 ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश जुलाई माह में देना चाहिए।

जब पौधे लगभग 10 वर्ष के हो जाएँ, तब प्रति पौधा 80-100 कि.ग्रा. गोबर की सड़ी खाद, 1 कि.ग्रा. यूरिया, 2 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फॉस्फेट तथा 1 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश प्रति वर्ष देना चाहिए। खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग पौधे के मुख्य तने से लगभग 1 मीटर की दूरी पर 25-30 सेंटीमीटर गहरा गड्ढा बनाकर करना चाहिए।

अन्तवर्ती फसलें: कटहल के पौधों के बीच अतिरिक्त आय प्राप्त करने के लिए किसान मूंग, उड़द, बैंगन, टमाटर, भिंडी, मेथी, पपीता, अनन्नास, फालसा, अदरक और हल्दी जैसी अन्तवर्ती फसलें उगा सकते हैं।

फलों की तुड़ाई एवं उपज: कटहल के फलों की तुड़ाई सब्जी के रूप में उपयोग के लिए शुरुआती बसंत और गर्मियों में, जब तक बीज सख्त न हो जाएँ, की जाती है। पके फल के रूप में उपयोग के लिए जून से तुड़ाई प्रारम्भ होती है।

वृक्ष रोपण के लगभग 15-20 वर्ष बाद प्रति हैक्टर 40-50 टन फल प्राप्त किए जा सकते हैं। अधिकांश किस्मों में एक पेड़ से 100-200 फल प्राप्त होते हैं।

कटहल के स्वादिष्ट चिप्स

मूल्य संवर्धन: पके हुए कटहल के फ्लेक्स (कोष्ठक) मिठाई के रूप में खाए जाते हैं या विभिन्न रूपों में प्रसंस्करित किए जाते हैं, जैसे डिब्बाबंदी। कटहल से कैंडी, सिरप, जैम, आरटीएस पेय, स्क्वैश, अचार, चिप्स और पापड़ बनाए जाते हैं। कटहल के बीजों को उबालकर, भूनकर, सुखाकर या नमकीन बनाकर मेवे की तरह भी खाया जाता है।

भाकृअनुप की मासिक लोकप्रिय पत्रिका
'खेती' सितम्बर, 2026 अंक के प्रमुख आकर्षण

- देसी गोवंश आधारित लाभकारी डेरी व्यवसाय
- पशुधन स्वास्थ्य में लाभकारी इन्फ्रारेड थर्मल इमेजिंग तकनीक
- बकरियों के मेमनों का वैज्ञानिक प्रबंधन
- कृषक समृद्धि की दिशा में खेत बचाओ अभियान
- मशरूम उत्पादन से बनी सफल उद्यमी
- रेनबो ट्राउट का वैज्ञानिक पालन एवं प्रजनन
- जलवायु अनुकूल मकचरी की वैज्ञानिक खेती
- ताड़ उत्पादन से भरपूर संभावनाएं
- फोग है शुष्क क्षेत्रों का उत्तम पशु चारा

संपर्क सूत्र: प्रभारी, व्यवसाय एकक, भाकृअनुप-कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय, कैब-1, पूसा गेट, नई दिल्ली-110012
दूरभाष: 25843657, www.icar.org.in

पर्वतीय क्षेत्रों में पॉलीहाउस में सब्जी उत्पादन

रीना कुमारी, रमेश कुमार, राजीव कुमार, आँचल चौहान और **कुमारी शिवानी**

पर्वतीय क्षेत्र, विशेषकर हिमाचल प्रदेश, विविध जलवायु एवं प्राकृतिक परिस्थितियों के कारण सब्जी उत्पादन के लिए अत्यंत उपयुक्त माने जाते हैं। यहां उगाई जाने वाली अनेक सब्जियां मैदानी क्षेत्रों में बेमौसमी सब्जियों के रूप में उपलब्ध होती हैं, जिससे किसानों को बेहतर मूल्य प्राप्त होता है। पर्वतीय क्षेत्रों की ढालदार भूमि, सीढ़ीनुमा खेत, ऊँचाई तथा जलवायु की विविधता यहां की कृषि को विशिष्ट बनाती है। हालांकि, शीतकाल में कम तापमान के कारण छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए खुले खेतों में सब्जियों की सफल खेती करना चुनौतीपूर्ण होता है। ऐसी परिस्थितियों में पर्वतीय कृषि के विकास के लिए आधुनिक एवं स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप तकनीकों को अपनाना आवश्यक है। पॉलीहाउस तकनीक इस दिशा में एक प्रभावी विकल्प है। इसके माध्यम से तापमान, आर्द्रता तथा अन्य आवश्यक पर्यावरणीय कारकों को नियंत्रित कर वर्षभर गुणवत्तापूर्ण सब्जियों का उत्पादन किया जा सकता है। पॉलीहाउस में उगाई गई सब्जियों की गुणवत्ता बेहतर होती है तथा उन्हें बाजार में अच्छे दाम प्राप्त होते हैं। साथ ही, कम क्षेत्र में अधिक उत्पादन और जंगली पशुओं से फसलों की सुरक्षा जैसी विशेषताओं के कारण यह तकनीक पर्वतीय क्षेत्रों में किसानों की आय बढ़ाने का एक प्रभावी माध्यम बन रही है।

पॉलीहाउस एक संरक्षित कृषि संरचना है, जिसमें पौधों को प्रतिकूल मौसम एवं बाहरी वातावरण से सुरक्षा प्रदान की जाती है। इसके भीतर प्रकाश, तापमान, आर्द्रता, कार्बन डाइऑक्साइड तथा वायु संचार जैसे पर्यावरणीय कारकों को पौधों की वृद्धि एवं अधिक उत्पादन के लिए अनुकूल बनाए रखा जाता है। सामान्यत: पॉलीहाउस का निर्माण एल्यूमिनियम या गैल्वेनाइज्ड लोहे के ढांचे पर 200 माइक्रॉन मोटी पराबैंगनी (यूवी) किरण-प्रतिरोधी पॉलीथीन शीट लगाकर किया जाता है।

सूर्य का प्रकाश पारदर्शी पॉलीथीन आवरण से होकर पॉलीहाउस के भीतर प्रवेश करता है। इसके बाद उत्पन्न ऊष्मा का अधिकांश भाग बाहर नहीं निकल पाता, जिससे भीतर का तापमान बाहरी वातावरण की तुलना में अधिक बना रहता है। इसके अतिरिक्त, पौधों की श्वसन क्रिया से निकलने वाली कार्बन डाइऑक्साइड भी पौधों की वृद्धि में सहायक होती है। इस प्रकार ग्रीनहाउस प्रभाव के कारण पॉलीहाउस के भीतर अनुकूल सूक्ष्म जलवायु (माइक्रोक्लाइमेट) निर्मित होती है, जिससे वर्षभर बेहतर गुणवत्ता एवं अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

पॉलीहाउस निर्माण

पॉलीहाउस की स्थापना से पहले उपयुक्त स्थान का चयन एवं वैज्ञानिक मानकों का पालन करना आवश्यक है, ताकि फसलों की बेहतर वृद्धि और अधिक उत्पादन सुनिश्चित किया जा सके। इसके लिए निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए:

औद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, डॉ. यशवंत सिंह परमार औद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, थुनाग-175048, जिला मण्डी, हिमाचल प्रदेश

लाभ

- बेमौसमी सब्जी उत्पादन
- प्राकृतिक प्रकोप से फसलों का बचाव
- प्रति इकाई क्षेत्र में अधिक उत्पादन
- 35-40 प्रतिशत तक जल की बचत
- कीट एवं रोगों का प्रभावी प्रबंधन
- सर्दी, बर्फबारी, वर्षा, ओलावृष्टि एवं पाले से सुरक्षा
- नई एवं उच्च मूल्य वाली सब्जी फसलों की खेती की संभावना
- कम समय में गुणवत्तापूर्ण पौध तैयार करना

पॉलीहाउस की उन्नत संरचना

उपयुक्त स्थान का चयनः पॉलीहाउस का निर्माण ऐसे स्थान पर करें, जहाँ पूरे दिन पर्याप्त धूप मिले तथा सिंचाई के लिए पानी और उचित वायु संचार की सुविधा उपलब्ध हो।

समतल भूमि एवं जल निकासीः भूमि समतल हो तथा वर्षा या सिंचाई के अतिरिक्त पानी की निकासी की समुचित व्यवस्था हो, जिससे जलभराव की समस्या न हो।

तेज हवाओं से सुरक्षाः पॉलीहाउस ऐसे स्थान पर स्थापित करें, जहाँ उत्तर या उत्तर-पश्चिम दिशा में पेड़ या पहाड़ियाँ प्राकृतिक अवरोध का कार्य करें और तेज हवाओं से सुरक्षा मिल सके।

वेंटिलेशन की व्यवस्थाः पॉलीहाउस के दोनों ओर कीटरोधी जालीयुक्त वेंटिलेशन की व्यवस्था हो, ताकि वायु का समुचित प्रवाह बना रहे और तापमान नियंत्रित किया जा सके।

मजबूत एवं टिकाऊ संरचनाः संरचना के निर्माण में गैल्वेनाइज्ड आयरन (जी.आई.) पाइप, एंगल अथवा बॉक्स सेक्शन का उपयोग करें तथा आवश्यकतानुसार उन पर सुरक्षात्मक पेंट करें।

पॉलीहाउस में उत्पादित खीरे की स्वस्थ उपज

स्वच्छता बनाए रखेंः पॉलीहाउस के चारों ओर नियमित सफाई रखें, जिससे कीट एवं रोगों का प्रकोप कम हो सके।

जल निकास की समुचित व्यवस्थाः अतिरिक्त पानी को बाहर निकालने के लिए प्रभावी जल निकासी प्रणाली आवश्यक है।

प्रशिक्षण एवं तकनीकी मार्गदर्शनः पर्वतीय क्षेत्रों में कम लागत वाले स्वाभाविक रूप से हवादार पॉलीहाउस अधिक उपयुक्त माने जाते हैं। पॉलीहाउस में खेती प्रारंभ करने से पहले कृषि या बागवानी विभाग, कृषि विज्ञान केन्द्र अथवा निकटवर्ती कृषि एवं बागवानी विश्वविद्यालय से प्रशिक्षण एवं तकनीकी मार्गदर्शन प्राप्त करना लाभदायक रहता है।

फसल एवं किस्मों का चयन

पॉलीहाउस में सब्जियों का चयन स्थानीय जलवायु, क्षेत्र की ऊँचाई तथा बाजार की मांग को ध्यान में रखकर करना चाहिए, ताकि उत्पादों का बेहतर मूल्य प्राप्त हो सके। आर्थिक दृष्टि से टमाटर, शिमला मिर्च, पार्थेनोकार्पिक खीरा, चेरी टमाटर, हरा धनिया, अगेती फूलगोभी तथा लेट्यूस (सलाद पत्ता) जैसी फसलें अधिक लाभकारी मानी जाती हैं।

पॉलीहाउस में मुख्यतः ऐसी सब्जियों की खेती करना उपयुक्त रहता है जो ऊर्ध्वाधर रूप से बढ़ती हों तथा कम स्थान घेरती हों। फसल एवं किस्म का चयन क्षेत्र की ऊँचाई और स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार किया जाना चाहिए। साथ ही, अधिक उत्पादन, रोग प्रतिरोधक क्षमता, बेहतर गुणवत्ता तथा लंबे समय तक निरंतर उत्पादन देने वाली संकर (हाइब्रिड) किस्मों को प्राथमिकता देनी चाहिए।

सिफारिशें

- पॉलीहाउस की पॉलीथीन शीट को 3-4 वर्षों बाद आवश्यकता अनुसार बदल दें।
- रोपण से पूर्व मिट्टी का नीम की खली अथवा फार्मेलिन से उपचार करें।
- निर्जीवीकृत मिट्टी पर अनावश्यक आवागमन से बचें।
- निर्जीवीकृत मिट्टी को दूषित हाथों या उपकरणों से न छुएँ।
- मृदा स्वास्थ्य बनाए रखने के लिए जैविक खादों का अधिक उपयोग करें।
- अधिक लाभ के लिए उच्च मूल्य वाली सब्जी फसलों का चयन करें।
- सिंचाई के लिए टपक (ड्रिप) सिंचाई प्रणाली अपनाएँ।
- पॉलीहाउस में नियमित सफाई रखें तथा रोगग्रस्त पौधों एवं पत्तियों को तुरंत हटाकर नष्ट करें।
- लम्बी एवं बेलदार सब्जियों की खेती अपेक्षाकृत अधिक लाभकारी रहती है।
- केवल स्वस्थ एवं रोगमुक्त पौध का ही रोपण करें।
- प्रत्येक फसल चक्र के बाद पॉलीहाउस एवं उपकरणों का निर्जीवीकरण अवश्य करें।

उन्नत तकनीक से टमाटर उत्पादन

पर्वतीय क्षेत्रों में पॉलीहाउस तकनीक सब्जी उत्पादन की एक प्रभावी एवं लाभकारी पद्धति है। इसके माध्यम से बेमौसमी एवं गुणवत्तापूर्ण सब्जियों का उत्पादन कर किसानों को बेहतर मूल्य प्राप्त होता है। साथ ही, यह तकनीक प्रतिकूल मौसम, जंगली पशुओं तथा कीट-रोगों से फसलों की सुरक्षा प्रदान करती है। उपयुक्त फसल एवं किस्मों का चयन, वैज्ञानिक प्रबंधन तथा आधुनिक सिंचाई तकनीकों को अपनाकर कम क्षेत्र में अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। इसलिए पॉलीहाउस तकनीक पर्वतीय क्षेत्रों में किसानों की आय बढ़ाने, रोजगार सृजन तथा संरक्षित खेती को बढ़ावा देने का एक प्रभावी माध्यम सिद्ध हो रही है।

स्वस्थ शिमला मिर्च

लेखकों से अनुरोध

आज सूचना प्रौद्योगिकी के बदले हुए कदमों को हमारे पाठक और लेखक दोनों ने पहचाना है। पाठकगण लेखकों से सीधी बात कर सकें, इसलिए हम चाहते हैं कि सभी लेखक अपने लेख पोर्टल epatrika.icar.org.in में भेजने के साथ ई-मेल पता तथा मोबाइल नम्बर अवश्य दें।

संपादक

गुलाब की उन्नत बागवानी

रिंकू भास्कर[1] और **रमेश सिंह**[2]

गुलाब (रोसा हाइब्रिडा) एक अत्यंत लोकप्रिय एवं आकर्षक पुष्पीय पौधा है, जिसे अपनी मनमोहक सुंदरता, मनभावन सुगंध और विविध रंगों के कारण विशेष पहचान प्राप्त है। यह रोजेसी कुल का सदस्य है तथा प्राचीन काल से ही अपनी विशिष्ट उपयोगिता और सौंदर्य के कारण लोकप्रिय रहा है। इसकी रंग-बिरंगी पंखुड़ियाँ प्रकृति की अनुपम छटा का प्रतीक होने के साथ-साथ चित्रकला, हस्तशिल्प और आभूषणों में भी व्यापक रूप से प्रयुक्त होती हैं। 'फूलों का राजा' कहलाने वाला गुलाब घरेलू एवं अंतर्राष्ट्रीय बाजार में अत्यधिक मांग वाला व्यावसायिक पुष्प है। इसका उपयोग सजावट, पुष्प सज्जा, इत्र, गुलाब जल, औषधीय उत्पादों तथा प्रसंस्करित उत्पादों के निर्माण में किया जाता है। व्यावसायिक दृष्टि से इसकी खेती किसानों के लिए लाभकारी सिद्ध होती है। उच्च गुणवत्ता के पुष्प उत्पादन के लिए ग्रीनहाउस में इसकी खेती सर्वोत्तम मानी जाती है। साथ ही, सफल उत्पादन के लिए उपयुक्त जलवायु, उर्वर एवं अच्छी जल निकास वाली भूमि का चयन अत्यंत आवश्यक है।

गुलाब केवल एक आकर्षक पुष्प ही नहीं, बल्कि विश्व के सबसे महत्वपूर्ण व्यावसायिक फूलों में भी शामिल है। आधुनिक पुष्पोत्पादन में इसकी बढ़ती मांग ने इसे किसानों और उद्यमियों के लिए आय का एक सशक्त माध्यम बना दिया है।

विशेषताएँ: गुलाब के पौधे वर्षभर फूल प्रदान करते हैं, विशेष रूप से सर्दियों में इनकी छटा अधिक आकर्षक होती है। इसके फूलों में 5 से अधिक पंखुड़ियाँ हो सकती हैं और यह विभिन्न रंगों में उपलब्ध होते हैं। पौधे झाड़ीदार होते हैं और इनके फूलों का उपयोग गुलदस्ते, गजरे, गुलाब जल, इत्र और गुलकंद बनाने में किया जाता है।

मधुमक्खी द्वारा पारगण में अहम भूमिका

उपयुक्त जलवायु: गुलाब के लिए ठंडी और शुष्क जलवायु अनुकूल होती है। ठंडे मौसम में फूल अधिक चमकदार और कोमल होते हैं। हालांकि, अत्यधिक ठंड से पौधों को नुकसान हो सकता है।

मृदाः गुलाब की खेती लगभग सभी प्रकार की मृदा में की जा सकती है, लेकिन दोमट, बलुई दोमट या कार्बनिक पदार्थों से समृद्ध मृदा इसके उत्पादन हेतु अधिक उपयुक्त होती है। वहीं छायादार और जलभराव वाली भूमि पौधे के लिए हानिकारक होती है।

[1]पी.एच.डी. छात्र, [2]प्राध्यापक, पादप रोग विज्ञान विभाग, सरदार वल्लभ भाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, मेरठ, उत्तर प्रदेश

प्रमुख किस्में: गुलाब की विभिन्न प्रमुख किस्में हैं जिनमें सोनिया, स्वीटहार्ट, सुपरस्टार, गोल्ड मेडल, बेंजामिन पौल, अमेरिकन होम आदि शामिल हैं। भारत में विकसित किस्मों में ताजमहल, गुलाबी गगन, मिस्टी आदमी, प्रिंस ऑफ वेल्स, अजब प्रेम, सागर गुलाब, कोरल स्टार और विन रोज प्रमुख हैं।

प्रवर्धन: गुलाब की नई किस्मों को आमतौर पर बीज से विकसित किया जाता है, जबकि पुरानी किस्मों का विस्तार कटिंग, बडिंग, गूटी और ग्राफ्टिंग जैसी तकनीकों से किया जाता है। व्यावसायिक रूप से, 'टी-बडिंग' सबसे प्रभावी विधि मानी जाती है। इस प्रक्रिया के लिए पहले रूटस्टॉक (बेस पौधा) तैयार किया जाता है। रूटस्टॉक हेतु कटिंग जुलाई-अगस्त के दौरान लगाई जाती है, जो लगभग दिसंबर-जनवरी तक बडिंग के लिए उपयुक्त हो जाती है।

आकर्षक पुष्पों में गुलाब का प्रमुख स्थान

कटिंग (रूट स्टॉक) तैयार करना

रूट स्टॉक तैयार करने के लिए एडवर्ड (रोजा बोर्बोनिअना) किस्म सबसे अधिक लोकप्रिय है और इसे हमारे क्षेत्र के लिए उपयुक्त माना जाता है। इसके अतिरिक्त, रोजा मल्टीफ्लोरा और रोजा इण्डिका जैसी पाउडरी मिल्ड्यू रोधी किस्मों का भी चयन किया जा सकता है।

रूट स्टॉक हेतु, उन स्वस्थ टहनियों का चयन किया जाता है जिनकी मोटाई लगभग 15-20 सेंटीमीटर हो। इन टहनियों को सिकेटियर से काटने के बाद, निचले सिरे को केराडिक्स, रूटाडिक्स या रूटेक्स जैसे फ्रूटिंग हार्मोन से उपचारित किया जाता है ताकि जड़ें तेजी से विकसित हो सकें। इसके बाद, बालू या वर्मीक्युलाइट से भरी क्यारियों में कटिंग्स लगाई जाती हैं और उचित नमी बनाए रखी जाती है। जब इन कटिंग्स में जड़ें विकसित हो जाती हैं, तब इन्हें बडिंग के लिए तैयार क्यारियों में स्थानांतरित कर दिया जाता है।

कालिकायन (बडिंग): तैयार रूटस्टॉक पौधों में से उन नई शाखाओं का चयन करना चाहिए जो लगभग पेंसिल की मोटाई जितनी हों। चयनित शाखाओं पर जमीन से लगभग 15-20 सेंटीमीटर ऊपर अंग्रेजी के 'टी' आकार का चीरा लगाना चाहिए, जिसकी लंबाई लगभग 2.5 सेंटीमीटर हो। इसके बाद, लगभग 125 सेंटीमीटर ऊपर (क्षितिज के समानांतर) बडिंग की प्रक्रिया की जानी चाहिए।

खाद एवं उर्वरक प्रबंधन

गुलाब के नए पौधों को रोपने से पहले प्रत्येक गड्ढे में आधी मिट्टी और आधा सड़ा हुआ कम्पोस्ट या गोबर की खाद मिलाकर भरना चाहिए। पुराने पौधों की कटाई-छंटाई तेज चाकू से करनी चाहिए। मातृ पौधे से लगभग 2.5 सेंटीमीटर लंबी, ढाल आकार की छिलके सहित स्वस्थ कली को 'टी' आकार के चीरे में सावधानीपूर्वक डालकर, पॉलीथिन पट्टी (200 गेज मोटी, 1 सेंटीमीटर चौड़ी और 45 सेंटीमीटर लंबी) से बांध देना चाहिए। मातृ पौधे का चयन करते समय ध्यान रखना आवश्यक है कि वह स्वस्थ और रोगमुक्त हो। ऐसी टहनी का चयन करें, जिसमें शाकीय कलियाँ गुलाबी रंग की हों।

उन्नत विधि से स्वस्थ उत्पादन

कलम लगाने के बाद क्यारी में नमी बनाए रखना जरूरी होता है। लगभग 15-20 दिनों में कली से शाखा निकलने लगती है, जो नई और कोमल होती है। इसे मजबूती प्रदान करने के लिए नई कली निकलते ही उसे हटा दें और शाखा को भी छोटा रखें। ये पौधे सितंबर-अक्टूबर तक रोपाई के लिए तैयार हो जाते हैं। यदि संभव हो, तो जुलाई-अगस्त में इन्हें ऊँचे स्थान पर स्थानांतरित करें, जिससे पौधा अधिक स्वस्थ विकसित हो सके।

खेत की तैयारी: पौधा रोपने के लिए स्थान चुनने के बाद, उसे समतल करें और कंकड़-पत्थर हटाकर मिट्टी को साफ करें। खेत की एक बार गहरी जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करें और फिर 2-3 बार देसी हल या कल्टीवेटर से जुताई कर पाटा चलाकर मिट्टी को भुरभुरा बनाएं। खेत के समुचित विन्यास के बाद क्यारियाँ तैयार करें और किस्म के अनुसार 20-45 सेंटीमीटर आकार के गड्ढे खोदकर उसमें सड़ी हुई खाद मिलाकर भर दें।

विंटरिंग प्रक्रिया अक्टूबर-नवंबर में की जाती है, जिसके बाद खाद और उर्वरक का

उपयोग किया जाता है। गड्ढों में आधी मिट्टी और आधा सड़ा हुआ कम्पोस्ट या गोबर की खाद मिलाकर भरें और क्यारियों की सिंचाई करें। इसके लगभग 15-20 दिनों बाद, 90 ग्राम उर्वरक मिश्रण प्रति वर्ग मीटर की दर से डालें। यह मिश्रण 2 भाग अमोनियम सल्फेट, 8 भाग सिंगल सुपर फॉस्फेट और 3 भाग म्यूरेट ऑफ पोटाश का होता है। पुष्पण समाप्त होने के बाद अमोनियम सल्फेट और पोटेशियम सल्फेट का पुन: प्रयोग उचित रहता है। चमकदार फूल प्राप्त करने के लिए, 7 भाग मैग्नीशियम सल्फेट, 7 भाग फेरस सल्फेट और 3 भाग बोरेक्स का मिश्रण तैयार कर, 15 ग्राम मात्रा को 10 लीटर पानी में घोलकर, प्रत्येक माह के अंतराल पर छिड़काव करें।

व्यावसायिक खेती के लिए प्रति वर्ग मीटर 5-6 किलोग्राम सड़ा हुआ कम्पोस्ट, 10 ग्राम नाइट्रोजन, 10 ग्राम फास्फोरस और 15 ग्राम पोटाश आवश्यक होता है। इस उर्वरक का आधा भाग छंटाई के बाद और शेष 45 दिनों के बाद दिया जाना चाहिए। भूमि की उर्वराशक्ति और पौधों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए, 50-100 ग्राम रोजमिक्सर (जो बाजार में उपलब्ध है) छंटाई के एक सप्ताह बाद दिया जा सकता है।

कटाई-छंटाई (प्रूनिंग): यह क्रिया गुलाब के पौधों से अच्छे आकार के फूल प्राप्त करने के लिए अत्यंत आवश्यक होती है। अक्टूबर-नवंबर का महीना इसके लिए उपयुक्त है। छंटाई करते समय यह ध्यान रखने की आवश्यकता होती है कि हाइब्रिड टी पौधे की गहरी छंटाई तथा अन्य किस्मों में हल्की स्वस्थ शाखाएं छोड़कर अन्य सभी कमजोर और रोगयुक्त शाखाएं काटकर हटा दें तथा बची हुई शाखाओं को भी 3-6 आंख के ऊपर से तेज चाकू या सिकेटियर द्वारा काट देना चाहिए। अन्य किस्मों में केवल पतली, अस्वस्थ और रोगयुक्त शाखाओं को ही काटकर हटाएं तथा बची हुई शाखाओं की केवल ऊपर से हल्की छंटाई करें।

गुलाब के मनमोहक गुलदस्ते

विंटरिंग: पौधों को छाँटने के तुरंत बाद विंटरिंग की क्रिया करते हैं। इस क्रिया में 30-45 सें.मी. व्यास और 15-20 सें.मी. गहराई की मिट्टी को निकालकर 7-10 दिनों तक जड़ों को खुला छोड़ देते हैं। उसके बाद खाद और मिट्टी मिलाकर गड्ढे को भरकर तथा क्यारियां बनाकर सिंचाई करनी चाहिए।

गुलाबों की कार्डबोर्ड बॉक्स में पैकेजिंग

रोपाई: पौधों की रोपाई के लिए उपयुक्त समय अंतिम सितंबर से अक्टूबर तक का महीना होता है। बड़े आकार वाले पौधे को 60-90 सें.मी. और छोटे आकार वाले पौधे को 30-45 सें.मी. की दूरी पर रोपाई की जानी चाहिए। रोपाई से पहले पौधे की सभी पतली टहनियों को काटकर हटा दें, केवल 4-5 स्वस्थ टहनियों को ही रखें और इन टहनियों को भी करीब 4-5' ऊपर से काटने के बाद।

देखरेख: निराई-गुड़ाई और सिंचाई को समय-समय पर करना चाहिए, इसके लिए मौसम के अनुसार खेत में नमी बनाए रखने के लिए गर्मियों में 4-6 दिनों की अंतराल और जाड़ों में 15-20 दिनों की अंतराल पर सिंचाई करें। खेत को हमेशा खरपतवार से मुक्त रखने की भी कोशिश करें।

डंठलों की कटाई एवं पैकिंग

पुष्प कलियों में वांछित रंग दिखाई देने पर प्रात: अथवा सायंकाल तेज सिकेटियर या धारदार चाकू की सहायता से पुष्प डंठलों की कटाई करें। कटाई के तुरंत बाद डंठलों को पानी से भरी प्लास्टिक की बाल्टी में रखें, ताकि उनकी ताजगी बनी रहे। इसके पश्चात 20-20 डंठलों के गुच्छे बनाकर उन्हें अखबार में लपेटें तथा रबर बैंड से बाँध दें। परिवहन के लिए इन गुच्छों को उपयुक्त आकार के कोरोगेटेड कार्डबोर्ड बॉक्स में पैक कर बाजार भेजें।

उपज: उपयुक्त प्रबंधन एवं वैज्ञानिक तकनीकों को अपनाने पर एक हैक्टर क्षेत्र से लगभग 2.5 से 5.0 लाख पुष्प डंठल प्राप्त किए जा सकते हैं।

इस प्रकार उन्नत उत्पादन तकनीकों को अपनाकर किसान उच्च गुणवत्ता के गुलाब का उत्पादन कर बेहतर मूल्य प्राप्त करने के साथ अपनी आय में उल्लेखनीय वृद्धि कर सकते हैं। ■

कीट एवं रोग प्रबंधन

गुलाब की फसल में दीमक, रेड स्केल, जैसिड, माहूँ (लाही) तथा थ्रिप्स प्रमुख कीट हैं। इनका समय पर नियंत्रण आवश्यक है। दीमक की रोकथाम के लिए थीमेट 10% दानेदार 10 ग्राम अथवा क्लोरोपाइरीफॉस 20% ईसी 25-50 मि.ली. प्रति 10 वर्गमीटर की दर से मृदा में मिलाएं। रेड स्केल एवं जैसिड के नियंत्रण हेतु सेविन 0.3 प्रतिशत या मैलाथियॉन 0.1 प्रतिशत का छिड़काव करें। गुलाब में डाइबैक सबसे गंभीर रोग माना जाता है, जो प्राय: छंटाई के बाद कटे हुए भाग से संक्रमण फैलाता है। इस रोग के कारण पौधा ऊपर से नीचे की ओर धीरे-धीरे सूखते हुए जड़ तक प्रभावित हो जाता है तथा अधिक प्रकोप होने पर पूरा पौधा नष्ट हो सकता है। इसकी रोकथाम के लिए छंटाई के तुरंत बाद कटे हुए भाग पर चौबटिया पेस्ट (4 भाग कॉपर कार्बोनेट + 4 भाग रेड लेड + 5 भाग तीसी का तेल) लगाएं। साथ ही खेत की नियमित सफाई, समय पर निराई-गुड़ाई, संतुलित खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग तथा जल निकास की उचित व्यवस्था बनाए रखें, ताकि जल जमाव न हो और रोगों का प्रकोप कम रहे। इसके अतिरिक्त काला धब्बा तथा पाउडरी मिल्ड्यू भी गुलाब के प्रमुख रोग हैं। इनके प्रभावी नियंत्रण के लिए केराथेन 0.15 प्रतिशत अथवा सल्फेक्स 0.25 प्रतिशत का छिड़काव करना उपयुक्त रहता है।

सौन्दर्य से भरपूर आइरिस पुष्प का उत्पादन

लोकेन्द्र सिंह, माम चंद सिंह और **पी.एस. बह्मानन्द**

आइरिस एक बहुवर्षीय सजावटी, पुष्पीय पौधा है जो इरेडेसी कुल से संबंधित है। इसकी लगभग 300 से अधिक प्रजातियाँ विश्व में पाई जाती हैं। यह फूल अपनी अद्भुत सुंदरता, विविध रंगों-नीला, बैंगनी, सफेद, पीला, नारंगी तथा गुलाबी और मनमोहक सुगंध के कारण विश्वभर में अत्यंत लोकप्रिय है। 'आइरिस' शब्द ग्रीक भाषा से लिया गया है जिसका अर्थ 'इंद्रधनुष' होता है, जो इसके बहुरंगी स्वभाव को दर्शाता है। भारत में आइरिस की खेती मुख्यत: जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, सिक्किम, मेघालय और पश्चिम बंगाल के पर्वतीय क्षेत्रों में की जाती है। यह फूल कर्तित पुष्प उद्योग, भूदृश्य सजावट, पुष्प विन्यास, इत्र निर्माण तथा औषधीय उपयोग के दृष्टिकोण से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। व्यावसायिक दृष्टि से 'डच आइरिस' सर्वाधिक उगाई जाने वाली प्रजाति है।

आइरिस की खेती भारत के पर्वतीय एवं शीतोष्ण क्षेत्रों के किसानों के लिए एक लाभकारी एवं उच्च मूल्य वाली वैकल्पिक पुष्प फसल के रूप में तेजी से उभर रही है। देश में कर्तित और सजावटी पुष्पों की बढ़ती माँग, निर्यात की व्यापक संभावनाएँ तथा राष्ट्रीय बागवानी मिशन जैसी सरकारी योजनाओं के अंतर्गत उपलब्ध सब्सिडी और तकनीकी सहायता इस फसल को किसानों के लिए और अधिक आकर्षक बनाती है।

उचित वैज्ञानिक प्रबंधन अपनाकर किसान आइरिस की खेती से बेहतर उत्पादन के साथ-साथ अपनी आय में भी बेहतर वृद्धि कर सकते हैं।

संरक्षित कृषि प्रौद्योगिकी केंद्र, भाकृअनुप - भाकृअनुसं, नई दिल्ली

आर्थिक महत्व एवं उपयोगिता

आइरिस की खेती किसानों के लिए एक अत्यंत लाभकारी व्यवसाय है। इसके फूलों की घरेलू एवं अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में भारी मांग रहती है। आइरिस के फूल कर्तित फूलों के रूप में शादी-विवाह, होटल सजावट, उपहार में बहुतायत से प्रयोग किए जाते है। आइरिस के बल्बों से बहुमूल्य 'ओरिस' इत्र तैयार किया जाता है। भूदृश्य एवं उद्यान सजावट, पार्क, बगीचे, क्यारियों में बल्बों को रोप कर सौंदर्यकरण किया जाता है।

आइरिस का अलौकिक पुष्प

जलवायु: आइरिस शीतोष्ण जलवायु की फसल है, इसलिए इसकी सफल खेती के लिए उपयुक्त तापमान एवं आर्द्रता का विशेष महत्व है। बल्बों के अंकुरण के लिए 10-13° से. तापमान उपयुक्त माना जाता है। वानस्पतिक वृद्धि के लिए 15-18° से. तथा पुष्पण के समय दिन का तापमान 18-22° से. और रात्रि का तापमान 10-15° से. सर्वोत्तम रहता है। बल्बों अथवा राइजोम के सुरक्षित भंडारण हेतु

5-10°से. तापमान उपयुक्त होता है।

बेहतर पुष्प गुणवत्ता के लिए 60-70% सापेक्षिक आर्द्रता आवश्यक है। डच आइरिस की खेती में शीत उपचार अनिवार्य होता है, जिसके अंतर्गत रोपण से पूर्व बल्बों को 9° से. तापमान पर 25-30 दिनों तक रखा जाता है।

भूमि का चयन एवं तैयारी: आइरिस के गुणवत्तायुक्त पुष्प उत्पादन के लिए बलुई दोमट मृदा सबसे उपयुक्त मानी जाती है। मृदा का पीएच मान 6.0-7.0 के बीच होना चाहिए तथा खेत में जल निकास की उचित व्यवस्था आवश्यक है। मिट्टी भुरभुरी और ढीली हो, जिससे बल्बों एवं राइजोम का विकास सुचारू रूप से हो सके।

भूमि की तैयारी के लिए ग्रीष्मकाल में एक गहरी जुताई करें तथा अंतिम जुताई के समय 25-30 टन/हैक्टर सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट मिलाएँ। इसके बाद 1 मीटर चौड़ी और 15-20 सें.मी. ऊँची क्यारियाँ बनाएँ तथा जल निकास के लिए उनके बीच 30-40 सें.मी. चौड़ी नालियाँ रखें।

रोपण सामग्री का चयन: रोपण के लिए स्वस्थ, रोगमुक्त एवं परिपक्व बल्ब अथवा राइजोम का चयन करना चाहिए। लगभग 10 सें.मी. परिधि वाले बल्ब व्यावसायिक उत्पादन के लिए उपयुक्त रहते हैं, क्योंकि इनमें शीघ्र पुष्पण एवं अधिक फूल प्राप्त होते हैं। 6-8 सें.मी. परिधि वाले छोटे बल्बों को अगले मौसम की रोपाई के लिए सुरक्षित रखा जा सकता है। रोपण से पूर्व बल्बों को थीरम 2 ग्राम प्रति लीटर पानी के घोल में 30 मिनट तक उपचारित करने से रोगों का प्रकोप कम होता है।

आइरिस के स्वस्थ विकसित पौधे

रोपण का समय एवं विधि: आइरिस के बल्बों का रोपण समय क्षेत्र की जलवायु के अनुसार अलग-अलग होता है। जम्मू-कश्मीर और हिमाचल प्रदेश में सितंबर-अक्तूबर, उत्तराखंड तथा दार्जिलिंग में अक्तूबर-नवंबर, जबकि मैदानी क्षेत्रों में नवंबर माह रोपण के लिए उपयुक्त माना जाता है।

बल्बों को उनके आकार से 2-2.5 गुना गहराई, अर्थात सामान्यत: 5-8 सें.मी. पर लगाना चाहिए। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 20-25 सें.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 10-15 सें.मी. रखें। रोपण के समय बल्ब की नोक ऊपर की ओर रहे और रोपण के तुरंत बाद हल्की सिंचाई करें। व्यावसायिक खेती के लिए लगभग 30,000-40,000 बल्ब प्रति हैक्टर का घनत्व उपयुक्त माना जाता है।

सिंचाई प्रबंधन: आइरिस की सफल खेती के लिए नियमित एवं संतुलित सिंचाई आवश्यक है। अधिक सिंचाई से बल्बों के सड़ने की समस्या उत्पन्न हो सकती है, इसलिए आवश्यकता के अनुसार ही पानी दें। रोपण के समय एक बार अच्छी सिंचाई पर्याप्त रहती है।

अंकुरण से पहले प्रत्येक 10-12 दिनों के अंतराल पर हल्की सिंचाई करें। वानस्पतिक वृद्धि के दौरान 7-8 दिन तथा पुष्पण काल में प्रत्येक 5-6 दिनों पर सिंचाई करनी चाहिए। फूलों की कटाई के बाद सिंचाई कम कर दें। वर्षा ऋतु में सिंचाई न करें तथा खेत में उचित जल निकास की व्यवस्था बनाए रखें। ड्रिप सिंचाई प्रणाली अपनाने से 40-50 प्रतिशत तक जल की बचत होती है, रोगों का प्रकोप कम होता है तथा उपज में वृद्धि होती है।

खाद एवं उर्वरक प्रबंधन: आइरिस में उच्च गुणवत्ता वाले फूल एवं पुष्प डंडियाँ प्राप्त करने के लिए संतुलित उर्वरक प्रबंधन आवश्यक है। भूमि की तैयारी के समय 25-30 टन प्रति हैक्टर गोबर की सड़ी खाद या कम्पोस्ट

बैंगनी आइरिस पुष्प की अनुपम छटा

प्रमुख किस्में

आइरिस को पौधों की वृद्धि एवं प्रवर्धन के आधार पर मुख्यत: राइजोमस आइरिस, बल्बस आइरिस तथा क्रेस्टेड आइरिस तीन प्रमुख समूहों में वर्गीकृत किया जाता है। इनमें राइजोमस और बल्बस समूह की किस्में व्यावसायिक स्तर पर सर्वाधिक उगाई जाती हैं। कर्तित पुष्प उत्पादन एवं सजावटी उद्यानों के लिए निम्न किस्में विशेष रूप से लोकप्रिय हैं:

ब्लू मैजिक: गहरे नीले-बैंगनी रंग के आकर्षक पुष्पों वाली यह किस्म कर्तित पुष्प एवं निर्यात के लिए अत्यंत उपयुक्त मानी जाती है।

वेजवूड: हल्के नीले रंग के सुंदर पुष्पों वाली, शीघ्र पुष्पण करने वाली किस्म, जिसकी कर्तित पुष्प बाजार में अच्छी माँग रहती है।

येलो क्वीन: चमकीले पीले रंग के बड़े एवं आकर्षक पुष्पों वाली यह किस्म भारतीय बाजार में विशेष रूप से लोकप्रिय है।

बेयर्ड आइरिस: बड़े, बहुरंगी एवं हल्की सुगंध वाले पुष्पों के कारण उद्यानों एवं लैंडस्केपिंग में व्यापक रूप से उपयोग की जाती है।

आइरिस कश्मीरियाना: सफेद से हल्के बैंगनी रंग के पुष्पों वाली यह स्थानीय किस्म मुख्यत: जम्मू-कश्मीर के पर्वतीय क्षेत्रों में पाई जाती है और अपनी विशिष्ट सुंदरता के लिए प्रसिद्ध है।

कटाई उपरांत प्रबंधन

प्रबंधन द्वारा फूलदान आयु 10-14 दिनों तक बढ़ाई जा सकती है। पुष्पों की कटाई के पश्चात पूर्व शीतन एक अति आवश्यक प्रक्रिया है, जिसमें 2 घंटे की अवधि में पुष्पों को 4-6° से. पर ठंडा किया जाता है। पुष्पों की ग्रेडिंग डंडियों की लंबाई के आधार पर करनी चाहिए। 65 सें.मी. से अधिक लंबाई की डंडियों को ग्रेड ए तथा 50-65 सें.मी. लंबाई की डंडियों को ग्रेड बी में रखा जाता है। बाजार में भेजने से पहले समान लंबाई की 10-25 पुष्प डंडियों के बंडल बनाए जाते हैं। पुष्पों को नम अखबार अथवा टिशू पेपर में लपेटकर कार्टन में रखकर बाजार में भेजा जाता है।

पीले-बैंगनी रंगों से सुसज्जित पुष्प

मिलाएँ। इसके साथ 120 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 80 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 100 कि.ग्रा. पोटाश तथा 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति हैक्टर की दर से दें।

नाइट्रोजन की अधिक मात्रा से पत्तियों की वृद्धि अधिक होती है और फूल कम आते हैं, इसलिए इसका संतुलित प्रयोग करें। पुष्पण से लगभग दो सप्ताह पहले 0.5 प्रतिशत एनपीके (19:19:19) का पर्णीय छिड़काव अत्यंत लाभकारी होता है।

खरपतवार नियंत्रण: बल्बों के रोपण के 20-25 दिनों बाद पहली निराई-गुड़ाई करनी चाहिए। वर्ष में कम-से-कम 4-5 बार निराई-गुड़ाई करना आवश्यक है। यदि संभव हो तो धान के पुआल अथवा काली पॉलिथीन से मल्चिंग करें। इससे 70-80 प्रतिशत तक खरपतवार नियंत्रित होते हैं तथा मिट्टी में नमी भी लंबे समय तक बनी रहती है। रासायनिक नियंत्रण के लिए रोपण के तुरंत बाद पेंडीमेथिलीन 1.5 लीटर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

व्यावसायिक खेती की भरपूर संभावनाएं

उत्पादन: डच आइरिस का औसतन उत्पादन 1.5-2.0 लाख पुष्प/हैक्टर तथा जर्मन आइरिस का 80,000-1.2 लाख पुष्प/हैक्टर प्राप्त किया जा सकता है। इसमें पुष्प डंडियों की औसत लंबाई 50-70 सें.मी. होती है। एक राइजोम औसतन 3-5 वर्षों तक उत्पादन देता है।

भंडारण: पुष्पों का भंडारण 2-4°से. पर 7-10 दिनों तक किया जा सकता है। अधिक दूरी वाले बाजारों में पुष्पों को भेजने के लिए 4-6°से. तापमान वाले रेफ्रिजरेटेड वाहन का प्रयोग करना आवश्यक है।

बल्बों की खुदाई एवं संग्रहण

पुष्पों की कटाई के 6-8 सप्ताह बाद, जब पत्तियाँ सूखने लगें, तब बल्बों की खुदाई करनी चाहिए। खुदाई सावधानीपूर्वक करनी चाहिए, ताकि बल्बों को क्षति न पहुँचे। खुदाई के पश्चात बल्बों को 2-3 दिन छाया में सुखाना चाहिए। तत्पश्चात थीरम 0.3% घोल से उपचारित करना चाहिए। बल्बों का भंडारण 5-10°से. तापक्रम तथा 70-75% सापेक्षिक आर्द्रता पर करना चाहिए। अगले सीजन तक इन्हें कोल्ड स्टोरेज में सुरक्षित रखा जा सकता है।

लैवेंडर उत्पादन से भरपूर संभावनाएँ

बनारसीलाल[1], **हेमा त्रिपाठी**[2], **अमरीश वैद्य**[3], **ए.एस. चरक**[4] और **भूपेंद्र नाथ त्रिपाठी**[5]

भारत, औषधीय एवं सुगंधित पौधों की समृद्ध जैव विविधता और पारंपरिक ज्ञान के लिए विश्वभर में प्रसिद्ध है। बदलते कृषि परिदृश्य में, जहाँ कृषि विविधीकरण तथा उच्च मूल्य वाली फसलों की आवश्यकता लगातार बढ़ रही है, वहीं लैवेंडर एक महत्वपूर्ण सुगंधित एवं औषधीय फसल के रूप में उभरकर सामने आया है। इसके पुष्पों से प्राप्त आवश्यक तेल का उपयोग इत्र, सौंदर्य प्रसाधन, अरोमाथेरेपी, औषधीय उत्पादों तथा वेलनेस उद्योग में व्यापक रूप से किया जाता है, जिसके कारण इसकी घरेलू और वैश्विक मांग निरंतर बढ़ रही है। भारत सरकार द्वारा वर्ष 2016 में प्रारंभ किए गए अरोमा मिशन तथा पर्पल रिवोल्यूशन ने लैवेंडर की व्यावसायिक खेती को नई पहचान दी है। इन पहलों का उद्देश्य किसानों की आय बढ़ाना, ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर सृजित करना तथा सुगंध एवं आवश्यक तेल उद्योग को प्रोत्साहित करना है। कम लागत, अपेक्षाकृत सरल प्रबंधन और मूल्य संवर्धन की बेहतर संभावनाओं के कारण यह फसल किसानों के लिए एक लाभकारी विकल्प बन रही है। जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश तथा उत्तराखंड के उच्च पर्वतीय क्षेत्र लैवेंडर की खेती के लिए विशेष रूप से उपयुक्त हैं। इन क्षेत्रों की अनुकूल जलवायु और मृदा में इसकी सफल खेती के साथ आवश्यक तेल का उत्पादन कर किसानों को बेहतर आर्थिक लाभ प्राप्त हो रहा है। बढ़ती बाजार मांग और सरकारी प्रोत्साहन को देखते हुए लैवेंडर की खेती पर्वतीय क्षेत्रों में आय बढ़ाने, कृषि विविधीकरण और ग्रामीण उद्यमिता को बढ़ावा देने का एक प्रभावी माध्यम बनकर उभर रही है।

लैवेंडर (लैवेंडुला ऑफिसिनैलिस) एक सुगंधित पुष्पीय फसल है, जो अपनी मनमोहक सुगंध और आकर्षक बैंगनी फूलों के लिए प्रसिद्ध है। इसके पुष्पों से प्राप्त आवश्यक तेल का उपयोग इत्र, साबुन, सौंदर्य प्रसाधनों तथा औषधीय उत्पादों के निर्माण में व्यापक रूप से किया जाता है। यह लैमिनैसी कुल का पौधा है।

लैवेंडर की खेती पर्यावरणीय दृष्टि से भी लाभकारी है। यह सूखा-सहनशील फसल है, जो कम पानी में भी अच्छी तरह पनपती है तथा मिट्टी के कटाव को रोकने में सहायक होती है। इसकी खेती मृदा की उर्वरता बनाए रखने, कीट एवं रोगों के प्रबंधन तथा जैव विविधता के संरक्षण में भी योगदान देती है। इसके पुष्प मधुमक्खियों एवं अन्य परागणकारी कीटों को आकर्षित करते हैं, जिससे प्राकृतिक परागण को बढ़ावा मिलता है।

लैवेंडर का उपयोग उद्यानों एवं भूदृश्य निर्माण में एक आकर्षक सजावटी पौधे के रूप में भी किया जाता है। यह फसल न केवल किसानों की आय बढ़ाने का प्रभावी माध्यम बन रही है, बल्कि कृषि पर्यटन, सुगंध उद्योग तथा स्टार्टअप आधारित उद्यमिता को भी नई दिशा प्रदान कर रही है।

जम्मू और कश्मीर का कृषि-पर्यावरणीय परिदृश्य

जम्मू और कश्मीर अपनी विशिष्ट भौगोलिक स्थिति और प्राकृतिक संसाधनों की प्रचुरता के कारण कृषि-पर्यावरणीय दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण क्षेत्र है। यह प्रदेश उत्तर-पश्चिम हिमालय में 32.17° से 37.06° उत्तरी अक्षांश तथा 73.2° से 80.36° पूर्वी देशांतर के मध्य स्थित है। यहाँ की जलवायु क्षेत्रीय विविधता से परिपूर्ण है।

[1]मुख्य वैज्ञानिक एवं प्रमुख, कृषि विज्ञान केंद्र, रियासी, [2]सह निदेशक (विस्तार), [3]निदेशक (विस्तार), [5]कुलपति, शेर-ए-कश्मीर कृषि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय-जम्मू, [4]प्रधान वैज्ञानिक एवं प्रमुख, कृषि विज्ञान केंद्र, डोडा

उपोष्णकटिबंधीय जम्मू क्षेत्र में औसत वार्षिक वर्षा 1069 मि.मी. तथा औसत तापमान 24.5° सें. है, जबकि समशीतोष्ण कश्मीर घाटी में औसत वर्षा 660 मि.मी. और औसत तापमान 13.3° सें. दर्ज किया जाता है। यह विविध कृषि-जलवायु, उपजाऊ मिट्टी, प्रचुर जल संसाधन एवं समृद्ध प्राकृतिक वनस्पतियाँ प्रदेश को बहुउद्देशीय एवं उच्च मूल्य वाली फसलों की खेती के लिए अत्यंत उपयुक्त बनाती हैं।

प्रदेश की अर्थव्यवस्था में कृषि का महत्वपूर्ण स्थान है, यद्यपि यहाँ की कृषि काफी हद तक वर्षा पर निर्भर है। वर्तमान में कुल कृषि क्षेत्रफल का लगभग 58 प्रतिशत भाग वर्षा आधारित है, जबकि 42 प्रतिशत भूमि सिंचाई के अंतर्गत आती है। प्रमुख फसलों में मक्का का सबसे अधिक क्षेत्रफल है, जो कुल कृषि क्षेत्र का लगभग एक-तिहाई भाग घेरता है। इसके अतिरिक्त, चावल (28.58 प्रतिशत) और गेहूँ (26 प्रतिशत) भी प्रमुख खाद्यान्न फसलें हैं।

कृषि एवं संबद्ध क्षेत्रों से आय और रोजगार की संभावनाओं को बढ़ाने के लिए प्रदेश में वैज्ञानिक कृषि पद्धतियों को अपनाने तथा सब्जियों, सुगंधित एवं औषधीय पौधों, केसर, मशरूम, मधुमक्खी पालन, रेशम उत्पादन और दलहन जैसी उच्च मूल्य वाली गतिविधियों को प्रोत्साहित किया जा रहा है। साथ ही, कृषि के प्रति युवाओं का घटता आकर्षण भविष्य के लिए एक गंभीर चुनौती है। इसलिए कृषि क्षेत्र में युवाओं की भागीदारी बढ़ाने के लिए नवाचार, आधुनिक तकनीकों, नीतिगत सहयोग तथा उद्यमिता आधारित पहलों को बढ़ावा देना आवश्यक है।

लैवेंडर के बैंगनी पुष्पों से महकती घाटी

जम्मू और कश्मीर में लैवेंडर की खेती भी तेजी से लोकप्रिय हो रही है और इसे बैंगनी क्रांति के रूप में पहचान मिली है। यहाँ की अनुकूल जलवायु और मृदा लैवेंडर उत्पादन के लिए उपयुक्त हैं। यह फसल न केवल किसानों की आय में उल्लेखनीय वृद्धि कर रही है, बल्कि क्षेत्रीय आर्थिक विकास, ग्रामीण उद्यमिता तथा सुगंध उद्योग को भी नई दिशा प्रदान कर रही है।

जम्मू और कश्मीर में लैवेंडर खेती का क्षेत्र

जम्मू और कश्मीर का संघ शासित प्रदेश उत्तर-पश्चिम हिमालय में स्थित है और अपनी समृद्ध जैव विविधता तथा औषधीय पौधों की विविधता के लिए प्रसिद्ध है। कश्मीर को अक्सर 'धरती का स्वर्ग' कहा जाता है। यहाँ पाए जाने वाले अनेक सजावटी एवं औषधीय पौधे सदियों से पारंपरिक स्वास्थ्य प्रणाली का अभिन्न हिस्सा रहे हैं। स्थानीय ज्ञान पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होता आया है और आज भी हकीम एवं पारंपरिक चिकित्सक विभिन्न पौधों की पत्तियों, बीजों, जड़ों, फूलों, फलों, छाल तथा कंदों का उपयोग रोगों के उपचार में करते हैं। इनका प्रयोग पानी, शहद, रस, चाय, दूध तथा तेल जैसे विभिन्न माध्यमों के साथ हर्बल औषधियाँ तैयार करने में भी किया जाता है। इसी समृद्ध विरासत के साथ जम्मू और कश्मीर में लैवेंडर की खेती की शुरुआत एक प्रयोगात्मक प्रयास के रूप में हुई, जो आज एक सफल कृषि आंदोलन का रूप ले चुकी है। पर्पल रिवोल्यूशन ने प्रदेश की ग्रामीण अर्थव्यवस्था को नई दिशा देने के साथ युवाओं के लिए भी रोजगार और उद्यमिता के नए अवसर सृजित किए हैं। अरोमा मिशन के प्रथम चरण (2017-18) में लगभग 164.92 हैक्टर क्षेत्र में 600 किसानों ने लैवेंडर की खेती प्रारंभ की। इसके बाद दूसरे चरण (2017-22) में इसका क्षेत्रफल बढ़कर लगभग 910.71 हैक्टर हो गया तथा 2,500 से अधिक किसान इससे जुड़ गए। वर्तमान में लैवेंडर की खेती किसानों को बेहतर आर्थिक लाभ प्रदान करने के साथ-साथ पर्यावरणीय दृष्टि से भी एक टिकाऊ एवं लाभकारी कृषि विकल्प के रूप में उभर रही है।

आय वृद्धि और समृद्धि

जम्मू और कश्मीर का संघ शासित प्रदेश कृषि आधारित अर्थव्यवस्था पर आधारित है, जहाँ अधिकांश ग्रामीण आबादी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि एवं उससे संबद्ध गतिविधियों पर निर्भर है। यह क्षेत्र न केवल रोजगार का प्रमुख स्रोत है, बल्कि कृषि आधारित उद्योगों के लिए कच्चा माल भी उपलब्ध करवाता है।

किसानों की आय बढ़ाने और कृषि में विविधीकरण को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से सरकार विशेष कृषि-जलवायु परिस्थितियों के अनुरूप आधुनिक, टिकाऊ एवं मूल्य संवर्धित खेती को बढ़ावा दे रही है। इसी दिशा में, विशेषकर डोडा जिले में लैवेंडर की खेती एक परिवर्तनकारी पहल के रूप में उभरी है। वर्ष 2016 में केंद्र सरकार द्वारा प्रारंभ किए गए अरोमा मिशन ने सुगंधित एवं औषधीय पौधों की खेती को नई गति प्रदान की, जिससे किसानों का रुझान लैवेंडर जैसी उच्च मूल्य वाली फसल की ओर बढ़ा है।

लैवेंडर की बढ़ती लोकप्रियता को वर्ष 2022 में भद्रवाह में आयोजित भारत के पहले लैवेंडर महोत्सव ने नई पहचान दी। लैवेंडर से प्राप्त आवश्यक तेल का बाजार मूल्य लगभग ₹10,000 प्रति लीटर है। इसके अतिरिक्त, लैवेंडर जल का उपयोग अगरबत्ती निर्माण में तथा हाइड्रोसोल का उपयोग साबुन, रूम फ्रेशनर और अन्य व्यक्तिगत देखभाल उत्पादों में किया जाता है।

लैवेंडर का आवश्यक तेल कॉस्मेटिक्स, परफ्यूम, औषधियों, सुगंधित मोमबत्तियों तथा त्वचा देखभाल उत्पादों में व्यापक रूप से प्रयुक्त होता है। अरोमाथेरेपी में इसका उपयोग तनाव, चिंता और मानसिक थकान को कम करने के साथ-साथ त्वचा को स्वस्थ एवं ताजगीपूर्ण बनाए रखने के लिए भी किया जाता है।

लैवेंडर की खेती से किसानों की आजीविका में उल्लेखनीय परिवर्तन आया है। वे किसान जो पहले मक्का जैसी पारंपरिक फसलों से प्रति हैक्टर लगभग ₹40,000 की आय प्राप्त करते थे, वे आज लैवेंडर की खेती से ₹3.5 से 6 लाख प्रति हैक्टर तक की आय अर्जित कर रहे हैं। इसके साथ ही, इस फसल ने कृषि-पर्यटन, मूल्य संवर्धन और स्टार्टअप आधारित उद्यमिता को भी बढ़ावा दिया है, जिससे जम्मू और कश्मीर की ग्रामीण अर्थव्यवस्था को नई दिशा मिली है।

नर्सरी में लैवेंडर पौध का प्रवर्धन

उत्पादन तकनीक

लैवेंडर की सफल खेती के लिए मिट्टी का चयन बेहद महत्वपूर्ण है। यह फसल अच्छी जल निकासी वाली दोमट भूमि में सबसे उपयुक्त रूप से पनपती है। भारी मृदा या पानी रुकने वाले क्षेत्रों में इसकी वृद्धि प्रभावित हो सकती है, इसलिए हल्की, उपजाऊ और जल निकासी वाली मिट्टी इसके लिए आदर्श मानी जाती है।

प्रोपोगेशन के लिए बीज, सॉफ्टवुड और हार्डवुड कटिंग का उपयोग किया जा सकता है। हालांकि, सॉफ्टवुड कटिंग से पौध तैयार करना अपेक्षाकृत आसान और सफल रहता है क्योंकि इनकी जड़ें जल्दी और मजबूत बनती हैं। बीज द्वारा प्रसार भी किया जाता है, लेकिन इसमें समय अधिक लगता है।

रोपण: पौधों को 75×75 सेंटीमीटर की दूरी पर लगाया जाता है। इस प्रकार एक हैक्टर भूमि में लगभग 18,000 पौधे लगाए जा सकते हैं। पौधों के बीच उचित दूरी रखने से उनकी अच्छी वृद्धि होती है और फूलों की गुणवत्ता भी बेहतर मिलती है।

कटाई एवं उपज

लैवेंडर की कटाई का उचित समय फूलों की उपज एवं आवश्यक तेल की गुणवत्ता को प्रभावित करता है। सामान्यत: कटाई तब की जाती है, जब लगभग 50-60 प्रतिशत पुष्प खिल चुके हों। इस अवस्था में पुष्पों में आवश्यक तेल की मात्रा एवं गुणवत्ता सर्वोत्तम होती है। कटाई तेज धार वाली दरांती से सावधानीपूर्वक करनी चाहिए, ताकि पौधों को क्षति न पहुँचे और पुन: वृद्धि प्रभावित न हो। सामान्यत: पौधे तीसरे वर्ष से पूर्ण उत्पादन देना प्रारंभ करते हैं। इस अवस्था में एक हैक्टर क्षेत्र से लगभग 60-70 क्विंटल पुष्प प्राप्त किए जा सकते हैं। इनसे औसतन 2.5 किलोग्राम उच्च गुणवत्ता वाला लैवेंडर तेल प्राप्त होता है। तेल की मात्रा एवं गुणवत्ता किस्म, जलवायु, ऊँचाई तथा फसल प्रबंधन पर निर्भर करती है। सामान्यत: तेल की प्राप्ति 0.4-0.5 प्रतिशत तक होती है, जबकि अधिक ऊँचाई वाले ठंडे क्षेत्रों में इसकी गुणवत्ता एवं उत्पादन अपेक्षाकृत बेहतर पाया जाता है।

सुझाव

लैवेंडर की खेती प्रारंभ करने से पहले किसानों को सीएसआईआर-आईआईआईएम, शेर-ए-कश्मीर कृषि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय तथा निकटवर्ती कृषि विज्ञान केंद्रों (केवीके) से तकनीकी मार्गदर्शन प्राप्त करना चाहिए। गुणवत्तापूर्ण रोपण सामग्री का चयन कर अनुशंसित वैज्ञानिक खेती पद्धतियों का पालन करना आवश्यक है। साथ ही, फूलों की कटाई एवं प्रसंस्करण उचित समय और वैज्ञानिक विधि से करने पर आवश्यक तेल की गुणवत्ता एवं उत्पादन में वृद्धि होती है। बेहतर लाभ के लिए उत्पादों की ब्रांडिंग एवं प्रभावी विपणन पर भी विशेष ध्यान देना चाहिए। जम्मू और कश्मीर में लैवेंडर की खेती किसानों की आय बढ़ाने, कृषि विविधीकरण और ग्रामीण उद्यमिता को नई दिशा दे रही है। बढ़ती बाजार मांग, मूल्य संवर्धन और सरकारी प्रोत्साहन के कारण यह फसल क्षेत्र के कृषि एवं आर्थिक विकास का एक सशक्त माध्यम बनकर उभर रही है।

भावी संभावनाएँ

जम्मू और कश्मीर में लैवेंडर की खेती भविष्य के लिए व्यापक संभावनाएँ प्रस्तुत करती है। यह केवल किसानों की आय बढ़ाने वाली फसल ही नहीं, बल्कि ग्रामीण उद्यमिता, मूल्य संवर्धन, निर्यात और कृषि पर्यटन को बढ़ावा देने का प्रभावी माध्यम भी बन रही है।

लैवेंडर तेल एवं इससे तैयार उत्पादों की यूरोप, अमेरिका तथा खाड़ी देशों में लगातार बढ़ती मांग इसके निर्यात की संभावनाओं को मजबूत बनाती है। वहीं, मूल्य संवर्धन के माध्यम से लैवेंडर तेल से इत्र, हर्बल कॉस्मेटिक्स, प्राकृतिक साबुन, अगरबत्ती तथा औषधीय उत्पाद तैयार कर किसानों और उद्यमियों को अतिरिक्त आय प्राप्त हो सकती है। इसके साथ ही, उच्च उपज देने वाली किस्मों का विकास, आधुनिक आसवन (डिस्टिलेशन) तकनीकों का उपयोग तथा जैविक खेती को बढ़ावा देकर उत्पादन एवं गुणवत्ता दोनों में सुधार किया जा सकता है।

इसके अलावा, लैवेंडर की खेती ग्रामीण विकास और कृषि पर्यटन को भी नई दिशा दे रही है। बैंगनी पुष्पों से सजे खेत पर्यटकों को आकर्षित कर रहे हैं, जिससे स्थानीय स्तर पर रोजगार और आय के नए अवसर सृजित हो रहे हैं। इस प्रकार, लैवेंडर की खेती किसानों को आत्मनिर्भर बनाने के साथ-साथ 'वोकल फॉर लोकल' अभियान और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को भी सशक्त बना रही है।

मधुमेह उपचार में प्रभावी जिमनेमा

स्वराज्य लक्ष्मी नायक, मनीष कुमार मित्तल और **मनीष दास**

जिमनेमा सिल्वेस्ट्रे जिसे पारंपरिक भारतीय चिकित्सा पद्धति में 'गुड़मार' अथवा 'शुगर नाशक' के नाम से जाना जाता है, एक अत्यंत महत्वपूर्ण औषधीय पौधा है। यह अपनी मधुमेहरोधी क्षमता के कारण विशेष पहचान रखता है। भारत सहित एशिया और अफ्रीका के उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में प्राकृतिक रूप से पाई जाने वाली यह काष्ठीय लता मीठे स्वाद की अनुभूति को कम करने तथा शरीर में ग्लूकोज चयापचय को नियंत्रित करने की विशिष्ट क्षमता रखती है। विश्वभर में मधुमेह रोगियों की बढ़ती संख्या के बीच जिमनेमा वैज्ञानिक शोध एवं हर्बल चिकित्सा का प्रमुख केंद्र बन गया है और एक सुरक्षित, सुलभ तथा वैज्ञानिक रूप से संभावनाशील प्राकृतिक औषधीय संसाधन के रूप में तेजी से उभर रहा है।

जिमनेमा सिल्वेस्ट्रे एपोसाइनेसी कुल की एक बहुवर्षीय काष्ठीय लता है, जो सामान्यत: समुद्र तल से 300-700 मीटर की ऊँचाई तक समतल क्षेत्रों, झाड़ीदार वनों, वन किनारों तथा झाड़ियों में प्राकृतिक रूप से पाई जाती है। जिमनेमा वंश की लगभग 40 प्रजातियाँ ज्ञात हैं, जिनका वितरण भारत के अलावा उष्णकटिबंधीय अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया, वियतनाम, मलेशिया तथा श्रीलंका में है।

भाकृअनुप- औषधीय एवं सुगंधित पादप अनुसंधान निदेशालय, बोरियावी-387310, आनंद, गुजरात

इस पौधे के तने पतले एवं रोमिल होते हैं, जबकि इसकी पत्तियाँ हल्के हरे रंग की, अंडाकार तथा विपरीत क्रम में लगी होती हैं। इसके फल सामान्यत: जोड़े में विकसित होते हैं, जिनमें चपटे बीज पाए जाते हैं। बीजों के अग्र भाग पर रेशेदार तंतु होते हैं, जो पवन द्वारा उनके प्रसार (प्रकीर्णन) में सहायक होते हैं। इस पौधे में पुष्पण सामान्यत: सितंबर से मार्च तक होता है, जबकि फल बनने की प्रक्रिया अक्तूबर से प्रारंभ हो जाती है। जिमनेमा सिल्वेस्ट्रे एक द्विगुणित प्रजाति है, जिसकी गुणसूत्र संख्या 2 एन = 22 होती है।

उपयोगी

जिमनेमा सिल्वेस्ट्रे आयुर्वेद की सबसे महत्वपूर्ण मधुमेहरोधी औषधीय वनस्पतियों में से एक है, जिसकी पहचान मीठे स्वाद की अनुभूति को कम करने तथा रक्त शर्करा के स्तर को नियंत्रित रखने की क्षमता के लिए की जाती है। इसके जैव सक्रिय यौगिक न केवल ग्लूकोज एवं लिपिड चयापचय के नियमन में सहायक हैं, बल्कि एंटीऑक्सीडेंट और सूजनरोधी प्रभाव भी प्रदर्शित करते हैं। बढ़ती वैश्विक मांग और प्राकृतिक स्रोतों से अत्यधिक दोहन के कारण इसके संरक्षण एवं वैज्ञानिक खेती को बढ़ावा देना समय की आवश्यकता है।

महत्व

जिमनेमा की पत्तियाँ जैव सक्रिय यौगिकों का समृद्ध स्रोत हैं। इनमें ट्राइटरपेनॉयड सैपोनिन प्रमुख रूप से पाए जाते हैं, जिनमें जिमनेमिक एसिड, जिमनेमासैपोनिन तथा जिमनेमोसाइड इसके मुख्य मधुमेहरोधी (एंटीडायबेटिक) घटक हैं। इसके अतिरिक्त, इसमें फ्लेवोनॉयड, अल्कलॉइड, कार्बनिक अम्ल, अमीनो अम्ल तथा रेजिनयुक्त यौगिक भी उपस्थित होते हैं। ये सभी जैव सक्रिय तत्व शरीर में ग्लूकोज के चयापचय को नियंत्रित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

जिमनेमिक एसिड आंत में ग्लूकोज के अवशोषण को कम करता है, जिससे रक्त शर्करा का स्तर नियंत्रित रहता है। साथ ही, यह इंसुलिन स्राव को प्रोत्साहित करने, शरीर में इंसुलिन संवेदनशीलता बढ़ाने तथा अग्न्याशय की β-कोशिकाओं के पुनर्जनन में

बहुउपयोगी है जिमनेमा पादप

भी संभावित रूप से सहायक माना जाता है।

जिमनेमा की एक विशेषता यह है कि इसकी पत्तियों को चबाने पर कुछ समय के लिए मीठे स्वाद की अनुभूति कम हो जाती है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि जिमनेमिक एसिड जीभ पर स्थित मीठे स्वाद के रिसेप्टरों को अस्थायी रूप से अवरुद्ध कर देता है।

मधुमेह नियंत्रण के अलावा, यह कोलेस्ट्रॉल एवं ट्राइग्लिसराइड के स्तर को कम कर लिपिड प्रोफाइल में सुधार करता है, शरीर में वसा संचय को घटाकर वजन प्रबंधन में सहायक होता है तथा एंटीऑक्सीडेंट, सूजनरोधी (एंटी इंफ्लेमेटरी), जीवाणुरोधी (एंटीमाइक्रोबियल), घाव भरने, प्रतिविष और इन-विट्रो कैंसररोधी गुण भी प्रदर्शित करता है।

भारत में किए गए विभिन्न नैदानिक अध्ययनों से यह भी स्पष्ट हुआ है कि जिमनेमा के जल-घुलनशील अर्क के नियमित सेवन से उपवास रक्त शर्करा तथा HbA1c के स्तर में उल्लेखनीय कमी आती है। साथ ही, यह टाइप-1 एवं टाइप-2 मधुमेह के रोगियों में इंसुलिन की आवश्यकता को कम करने में भी सहायक सिद्ध हो सकता है।

जिमनेमा पौधे की पत्तियां एवं लता

कृषि एवं संवर्धन तकनीक

बढ़ती औषधीय मांग और अत्यधिक दोहन के कारण जिमनेमा सिल्वेस्ट्रे अपने प्राकृतिक आवास में संवेदनशील होती जा रही है। इसलिए इसके वैज्ञानिक एवं व्यावसायिक उत्पादन की तकनीकों को अपनाना आवश्यक है। बीजों को बुआई से पूर्व 24 घंटे तक पानी में भिगोने से अंकुरण में सुधार होता है। इसके अलावा, 10-15 मि.मी. मोटाई वाली तीन गांठों (नोड) युक्त कठोर तनों की कटिंग को 500 पीपीएम आईबीए में 30 मिनटों तक उपचारित करने पर जड़ का बेहतर विकास होता है।

रोपण के लिए जून-जुलाई का समय उपयुक्त माना जाता है तथा पौधों के बीच 1.5 × 1.5 मीटर की दूरी रखनी चाहिए। पौधों के स्वस्थ विकास के लिए प्रति हैक्टर लगभग 4 टन सड़ी हुई गोबर की खाद का प्रयोग लाभकारी होता है। पहली कटाई रोपण के लगभग दो वर्ष बाद की जाती है, जबकि इसके बाद जून तथा सितंबर-अक्तूबर में वर्ष में दो बार कटाई की जा सकती है।

कटाई के बाद पत्तियों को छाया में पर्याप्त वायु संचार वाली जगह पर सुखाया जाता है, जिससे इनकी गुणवत्ता एवं औषधीय गुण सुरक्षित रहते हैं। वैज्ञानिक प्रबंधन अपनाने पर प्रति हैक्टर औसतन लगभग 1.5 टन सूखी पत्तियों का उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

प्रतिस्थापन एवं अपमिश्रण

बाजार में उपलब्ध कुछ जिमनेमा उत्पादों में करेला, दालचीनी, बनाबा तथा मेथी जैसी औषधीय वनस्पतियों की मिलावट पाई जाती है। यद्यपि इन पौधों में भी मधुमेहरोधी गुण मौजूद हैं, फिर भी वे जिमनेमा सिल्वेस्ट्रे के विशिष्ट औषधीय प्रभावों का पूर्ण विकल्प नहीं हैं। ऐसी मिलावट उत्पाद की शुद्धता, गुणवत्ता तथा चिकित्सीय प्रभावशीलता को प्रभावित कर सकती है। इसलिए जिमनेमा उत्पादों का चयन करते समय प्रमाणित एवं मानकीकृत उत्पादों का ही उपयोग करना चाहिए।

जिमनेमा पौधे के बीज एवं आकर्षक पुष्प

अनुशंसित खुराक

जिमनेमा की उपयुक्त खुराक उसके रूप एवं फॉर्मुलेशन पर निर्भर करती है। सामान्यत: वयस्कों के लिए 24% जिमनेमिक एसिड युक्त मानकीकृत अर्क की 400-600 मि.ग्रा. प्रतिदिन मात्रा उपयोग में लाई जाती है। तरल अर्क के रूप में इसकी 25-75 मि.ली. प्रति सप्ताह मात्रा दी जाती है, जबकि टैबलेट या कैप्सूल के रूप में यह लगभग 8-12 ग्राम सूखी पत्तियों के समतुल्य होती है।

विभिन्न अध्ययनों के अनुसार, 6-12 माह तक नियमित सेवन से बेहतर चिकित्सीय लाभ प्राप्त हो सकते हैं। बच्चों में इसके उपयोग के संबंध में पर्याप्त वैज्ञानिक प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं, इसलिए चिकित्सकीय परामर्श के बिना इसका सेवन नहीं करना चाहिए। जिमनेमा कच्ची जड़ी, चूर्ण, पेस्ट, तरल अर्क तथा मानकीकृत कैप्सूल एवं टैबलेट के रूप में उपलब्ध है और अनेक हर्बल योगों में अन्य औषधीय पौधों के साथ भी प्रयुक्त किया जाता है।

टिशू कल्चर, गुणवत्तायुक्त रोपण सामग्री, नर्सरी आधारित प्रवर्धन तथा जर्मप्लाज्म संरक्षण जैसी तकनीकों को अपनाकर इस महत्वपूर्ण औषधीय पौधे का सतत उत्पादन सुनिश्चित किया जा सकता है। साथ ही, इसके सक्रिय यौगिकों एवं चिकित्सीय प्रभावों पर निरंतर वैज्ञानिक अनुसंधान भविष्य में मधुमेह प्रबंधन के लिए नए और अधिक प्रभावी प्राकृतिक विकल्प विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। ■

बागवानी फसलों में ट्रैप द्वारा कीट प्रबंधन

विनीता राजपूत[1], **सुनील कुमार**[1], **नरेंद्र कुमार**[1], **हरदीप कलकल**[1] और **ओम प्रकाश**[2]

बागवानी फसलों में कीटों से होने वाले नुकसान को कम करना किसानों के सामने एक प्रमुख चुनौती है। रासायनिक कीटनाशकों के अंधाधुंध उपयोग से जहाँ पर्यावरण प्रदूषित हुआ है, वहीं परागणकर्ताओं एवं अन्य लाभकारी कीटों की संख्या पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। ऐसे में समेकित कीट प्रबंधन (आई.पी.एम.) के अंतर्गत कीट ट्रैप एक प्रभावी, सुरक्षित और पर्यावरण अनुकूल विकल्प के रूप में उभरे हैं। फसलों को हानिकारक कीटों के प्रकोप से बचाने के लिए विभिन्न प्रकार के कीट ट्रैप का उपयोग किया जाता है। ये ट्रैप खेत एवं उसके आसपास उड़ने वाले कीटों को आकर्षित कर पकड़ने में सहायक होते हैं। इनका उपयोग कीटों की विविधता का अध्ययन, नए कीटों के आक्रमण की निगरानी तथा खेत में उनकी संख्या का आकलन करने के लिए किया जाता है। अधिक संख्या में कीटों को पकड़कर ये ट्रैप सीधे तौर पर उनकी आबादी को नियंत्रित करने में मदद करते हैं। साथ ही इन्हें खेत की परिधि पर लगाकर सुरक्षा अवरोध के रूप में भी उपयोग किया जा सकता है।

एकीकृत कीट प्रबंधन में ट्रैप से प्राप्त जानकारी के आधार पर किसी कीट की आर्थिक क्षति स्तर का आकलन किया जाता है। इससे किसानों को सही समय पर कीटनाशकों के प्रयोग का निर्णय लेने में सहायता मिलती है तथा अनावश्यक छिड़काव से बचाव होता है। परिणामस्वरूप उत्पादन लागत कम होती है, पर्यावरण सुरक्षित रहता है तथा जैव विविधता का संरक्षण भी सुनिश्चित होता है।

[1]जिला विस्तार विशेषज्ञ, केवीके-सिरसा, [2]जिला विस्तार विशेषज्ञ, केवीके-फतेहाबाद, चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

कीट ट्रैपों का वर्गीकरण मुख्यत: उनकी कार्यप्रणाली के आधार पर किया जाता है। कुछ ट्रैप फेरोमोन (लैंगिक गंध) का उपयोग कर नर अथवा मादा कीटों को आकर्षित करते हैं, जिससे उनका प्रजनन चक्र प्रभावित होता है और कीटों की संख्या नियंत्रित करने में सहायता मिलती है। वहीं, कुछ ट्रैप प्रकाश के प्रति आकर्षित होने वाले रात्रिचर कीटों को पकड़ने के लिए प्रकाश स्रोत का उपयोग करते हैं।

इसके अतिरिक्त रंग, आहार अथवा अन्य आकर्षक पदार्थों पर आधारित ट्रैप भी विभिन्न कीटों की निगरानी एवं नियंत्रण में प्रभावी भूमिका निभाते हैं। विभिन्न प्रकार के कीट ट्रैपों तथा उनके कार्य सिद्धांत का विवरण इस प्रकार है:

स्टिकी ट्रैप: ये ट्रैप रंगीन, चिपचिपे कार्ड होते हैं, जिनका उपयोग मुख्यत: उड़ने वाले छोटे रसचूसक कीटों की निगरानी एवं नियंत्रण के लिए किया जाता है। इन ट्रैपों पर विशेष प्रकार का चिपचिपा पदार्थ (ग्लू) लगाया जाता है, जिससे आकर्षित होकर आने वाले कीट उस पर चिपक जाते हैं। ये ट्रैप प्रयोग में सरल, कम लागत वाले तथा पर्यावरण अनुकूल होते हैं। इनके माध्यम से न केवल कीटों के प्रारंभिक आक्रमण की जानकारी प्राप्त होती

है, बल्कि अपनाए गए कीट प्रबंधन उपायों की प्रभावशीलता का आकलन भी किया जा सकता है।

स्टिकी ट्रैप मुख्यत: पीले, नीले और सफेद रंग के होते हैं तथा प्रत्येक रंग अलग-अलग प्रकार के कीटों को आकर्षित करता है। पीले स्टिकी ट्रैप सफेद मक्खी, एफिड (चेंपा) तथा लीफ माइनर जैसे कीटों के नियंत्रण के लिए प्रभावी होते हैं। इनके लिए प्रति एकड़ 6-8 ट्रैप लगाने की अनुशंसा की जाती है।

नीले स्टिकी ट्रैप विशेष रूप से थ्रिप्स के नियंत्रण के लिए उपयोग किए जाते हैं। प्रभावी निगरानी एवं नियंत्रण के लिए प्रति एकड़ 10-15 ट्रैप लगाए जाने चाहिए।

सफेद स्टिकी ट्रैप का उपयोग फुदका, बग तथा विभिन्न प्रकार के भृंग (बीटल) जैसे कीटों की निगरानी एवं नियंत्रण के लिए किया जाता है। इनकी अनुशंसित संख्या 6-8 ट्रैप प्रति एकड़ है।

रंग-विशिष्ट आकर्षण के कारण स्टिकी ट्रैप समेकित कीट प्रबंधन (आई.पी.एम.) का एक प्रभावी घटक हैं, जो रासायनिक कीटनाशकों पर निर्भरता कम करने के साथ-साथ पर्यावरण एवं लाभकारी कीटों के संरक्षण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

स्टिकी ट्रैप द्वारा कीटों का प्रभावी नियंत्रण

फेरोमॉन ट्रैप: समेकित कीट प्रबंधन (आई.पी.एम.) का एक अत्यंत प्रभावी एवं चयनात्मक उपकरण है। फेरोमॉन वे प्राकृतिक रासायनिक संकेत (गंध) हैं, जिन्हें कीट एक-दूसरे से संचार एवं विशेष रूप से प्रजनन के लिए उत्सर्जित करते हैं। इन्हीं रसायनों के कृत्रिम रूप (ल्योर) तैयार कर ट्रैप में लगाए जाते हैं, जो संबंधित कीटों को आकर्षित कर पकड़ने का कार्य करते हैं।

फेरोमॉन ट्रैप का उपयोग मुख्यत: कीटों की निगरानी, उनकी आबादी का आकलन तथा समय पर नियंत्रण उपाय अपनाने के लिए किया जाता है। ये विशेष रूप से सूंडी, विभिन्न प्रकार के मोथ तथा अन्य लक्षित कीटों के नियंत्रण में प्रभावी पाए गए हैं। कुछ फेरोमॉन कीटों के व्यवहार को प्रभावित कर उनके आहार, गतिविधियों एवं प्रजनन चक्र में बाधा उत्पन्न करते हैं, जबकि यौन फेरोमॉन नर या मादा कीटों को आकर्षित कर उन्हें ट्रैप में फँसा लेते हैं, जिससे प्रजनन दर में कमी आती है।

कीटों की निगरानी के लिए सामान्यत: 4 यौन फेरोमॉन जाल प्रति एकड़ लगाने की अनुशंसा की जाती है। ये ट्रैप अत्यंत चयनात्मक होते हैं, इसलिए लाभकारी एवं मित्र कीटों को प्रभावित नहीं करते। ट्रैप की प्रभावशीलता बनाए रखने के लिए इसमें लगे ल्योर को लगभग 30-35 दिनों के अंतराल पर बदलना आवश्यक होता है।

फेरोमॉन ट्रैप के अतिरिक्त पैराफेरोमॉन ट्रैप भी उपयोग किए जाते हैं। इनमें प्रयुक्त रसायन प्राकृतिक फेरोमॉन नहीं होते, लेकिन फेरोमॉन की तरह कीटों को आकर्षित करते हैं। मिथाइल यूजीनॉल ट्रैप फल मक्खी के नियंत्रण

फेरोमोन जाल करे कीटों को आकर्षित

लाइट ट्रैप

इस ट्रैप का उपयोग मुख्यत: रात्रिचर कीटों, जैसे- मोथ, भृंग (बीटल), बग, मक्खी एवं टिड्डी आदि की निगरानी एवं नियंत्रण के लिए किया जाता है। यह ट्रैप कीटों की संख्या का आकलन करने के साथ-साथ उनके प्रमुख प्रकोप काल की जानकारी भी प्रदान करता है। रात के समय कीट ट्रैप में लगे प्रकाश स्रोत (बल्ब, लैम्प, सोलर लाइट अथवा फ्लोरोसेंट लाइट) की ओर आकर्षित होकर ट्रैप में फँस जाते हैं। विभिन्न कीट अलग-अलग प्रकार के प्रकाश के प्रति आकर्षित होते हैं। लेपिडोप्टेरा वर्ग के कीट पराबैंगनी (यूवी) प्रकाश की ओर अधिक आकर्षित होते हैं, जबकि डिप्टेरा वर्ग के कीट ऊष्मायुक्त प्रकाश स्रोतों की ओर आकर्षित होते हैं। वहीं मोथ, भृंग (बीटल) तथा बग जैसे कई कीट सामान्य प्रकाश स्रोतों से भी आकर्षित हो जाते हैं। सामान्यत: खेत या उसके आसपास 2 लाइट ट्रैप प्रति एकड़ लगाने की अनुशंसा की जाती है तथा इन्हें शाम 6 बजे से रात 10 बजे तक संचालित करना चाहिए। सेंसर आधारित सोलर इंसेक्ट ट्रैप अधिक प्रभावी माने जाते हैं, क्योंकि इन्हें बार-बार चालू या बंद करने की आवश्यकता नहीं होती। प्रतिदिन प्रात: ट्रैप में पकड़े गए कीटों को निकालकर खेत से दूर नष्ट कर देना चाहिए। लाइट ट्रैप का उपयोग सरल एवं प्रभावी है, किंतु इसका प्रयोग मुख्यत: रात्रिचर कीटों की निगरानी एवं नियंत्रण के लिए ही किया जाता है।

के लिए सबसे अधिक प्रचलित पैराफेरोमॉन ट्रैप है। इसका उपयोग विशेष रूप से आम, अमरूद एवं बेर जैसी बागवानी फसलों में किया जाता है। इसके लिए 2-4 ट्रैप प्रति एकड़ लगाने की अनुशंसा की जाती है। ट्रैप को सामान्यत: 6-7 फीट ऊँचे बाँस या अन्य सहारे पर लटकाया जाता है तथा दो ट्रैपों के बीच लगभग 30-50 मीटर की दूरी रखना अधिक उपयुक्त माना जाता है।

फेरोमॉन ट्रैप कीटों की प्रारंभिक निगरानी, समय पर नियंत्रण तथा रासायनिक कीटनाशकों के विवेकपूर्ण उपयोग में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यही कारण है कि आधुनिक बागवानी में इन्हें समेकित कीट प्रबंधन का एक अनिवार्य घटक माना जाता है।

हानिकारक कीटों से बचाव करें ट्रैप फसलें

लाइव ट्रैप क्रॉप

ये ऐसी फसलें या पौधे होते हैं, जिन्हें मुख्य फसल के बीच या उसके चारों ओर लगाया जाता है। इनका उद्देश्य हानिकारक कीटों को अपनी ओर आकर्षित करना होता है, ताकि वे मुख्य फसल पर आक्रमण न कर सकें। एक प्रभावी ट्रैप फसल वह होती है, जो कीटों को आहार, प्रजनन अथवा आश्रय के लिए अधिक आकर्षित करे।

सामान्यत: कीटों के अधिक प्रकोप होने पर ट्रैप क्रॉप को उखाड़कर नष्ट कर दिया जाता है, जिससे कीट मुख्य फसल तक न पहुँच सकें। हालांकि, इस स्थिति में ट्रैप क्रॉप से कोई आर्थिक उपज प्राप्त नहीं होती। टमाटर एवं बैंगन की फसल में गेंदा एक प्रभावी ट्रैप क्रॉप के रूप में उपयोग किया जाता है, जो कई हानिकारक कीटों तथा निमेटोड के प्रकोप को कम करने में सहायक होता है। इसी प्रकार, गोभी की फसल में सरसों डायमंड बैक मोथ को आकर्षित कर मुख्य फसल की सुरक्षा करती है।

कुछ ट्रैप फसल ऐसे रासायनिक पदार्थ भी उत्सर्जित करती हैं, जो हवा या मिट्टी के माध्यम से कीटों को दूर रखने में सहायक होते हैं। इस प्रकार ट्रैप फसल समेकित कीट प्रबंधन का एक सरल, पर्यावरण अनुकूल एवं प्रभावी उपाय है।

बागवानी फसलों में पर्यावरण अनुकूल कीट प्रबंधन के लिए ट्रैप आधारित विधि एक सरल, प्रभावी एवं दीर्घकालिक समाधान प्रस्तुत करती है। यह न केवल कीटों की समय पर पहचान एवं नियंत्रण में सहायक है, बल्कि रासायनिक कीटनाशकों पर निर्भरता भी कम करती है, जिससे जैव विविधता, मृदा स्वास्थ्य तथा पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने में मदद मिलती है। स्टिकी ट्रैप, फेरोमॉन ट्रैप, लाइट ट्रैप तथा ट्रैप क्रॉप जैसे विभिन्न ट्रैप अपने-अपने कार्य-सिद्धांत के आधार पर कीटों के व्यवहार को लक्षित करते हैं और समेकित कीट प्रबंधन (आई.पी.एम.) को अधिक प्रभावी बनाते हैं।

यदि इन ट्रैपों का उपयोग वैज्ञानिक अनुशंसाओं के अनुसार, उचित संख्या में तथा सही समय पर किया जाए, तो ये कीटनाशकों के विवेकपूर्ण उपयोग को बढ़ावा देने के साथ-साथ किसानों की लागत कम करने और फसल की गुणवत्ता में सुधार लाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अत: ट्रैप आधारित कीट प्रबंधन एक ऐसी टिकाऊ तकनीक है, जो कृषि को अधिक सुरक्षित, पर्यावरण अनुकूल और लाभकारी बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान देती है।

सिफारिशें

यद्यपि सभी प्रकार के कीट ट्रैप का उपयोग सरल है, फिर भी उनकी प्रभावशीलता बनाए रखने के लिए निम्न बातों का ध्यान रखना आवश्यक है:

- विभिन्न प्रकार के ट्रैप उनकी अनुशंसित संख्या के अनुसार ही प्रति एकड़ स्थापित करें।
- ट्रैप में प्रयुक्त ल्योर की प्रभावशीलता सामान्यत: 30-35 दिनों तक रहती है, इसलिए इसे समय-समय पर अवश्य बदलें।
- ट्रैप में पकड़े गए कीटों का नियमित आकलन करें, ताकि कीटों की संख्या तथा आर्थिक क्षति स्तर का सही अनुमान लगाया जा सके।
- ट्रैप में फँसे कीटों को नियमित रूप से निकालकर सुरक्षित तरीके से नष्ट करें।
- फल मक्खी के नियंत्रण के लिए लगाए जाने वाले मिथाइल यूजीनॉल ट्रैप में आवश्यकता अनुसार गुड़ के साथ मैलाथियॉन या क्लोरोपायरीफॉस का उपयोग किया जा सकता है, ताकि आकर्षित होकर आने वाली मक्खियों का प्रभावी नियंत्रण हो सके।
- ट्रैप का चयन हमेशा कीट की प्रजाति, उसके व्यवहार तथा संबंधित फसल के अनुसार करें, ताकि अधिकतम प्रभावशीलता प्राप्त हो सके।

निवेदन

लेखक बंधु फल फूल पत्रिका के लिए अपने लेख और संबंधित फोटो, कवरिंग लैटर के साथ सिर्फ निम्न पोर्टल पर ही अपने मोबाइल नम्बर के साथ भेजें। ध्यान रखें कि फोटो मौलिक होने के साथ जेपीजे फॉर्मेट में और उच्च रेज्योल्यूशन की हों। लेख में अधिकतम 1200 शब्दों की संख्या रखने का प्रयास करें। इसके अतिरिक्त सुझाव और प्रतिक्रियाएं भी भेज सकते हैं।

हमारा पोर्टल है :

epatrika.icar.org.in

-संपादक

उपाय

खीरा फसल में कीट एवं रोग प्रबंधन

राज किरण, **प्रज्ञा रंजन**, **भरत राज मीणा** और **भरत गावड़े**

खीरा एक महत्वपूर्ण कद्दूवर्गीय सब्जी फसल है, जो पोषक तत्वों से भरपूर होने के कारण व्यापक रूप से उपयोग की जाती है। कम अवधि में तैयार होने तथा अच्छी बाजार मांग के कारण यह फसल किसानों के लिए आय का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। खीरे की फसल विभिन्न कीट एवं रोगों से प्रभावित होती है। प्रारंभिक अवस्था में डैम्पिंग-ऑफ रोग से पौधों का जमाव कम हो जाता है। फसल की वृद्धि के साथ इल्ली एवं लाल कद्दू भृंग का प्रकोप देखा जाता है, जबकि गर्म एवं शुष्क मौसम में थ्रिप्स, माइट्स एवं फ्यूजेरियम विल्ट रोग की समस्या बढ़ जाती है। मार्च एवं अप्रैल में चूर्णिल आसिता एवं मृदुरोमिल आसिता तथा खरीफ मौसम में विषाणुजनित रोग प्रमुख बाधाएँ हैं। संरक्षित खेती जैसे पॉलीहाउस एवं नेट हाउस में जड़गाँठ सूत्रकृमि का प्रकोप भी गंभीर समस्या है। अतः अधिक एवं गुणवत्तायुक्त उत्पादन के लिए इन प्रमुख कीटों एवं रोगों की समय पर पहचान तथा समेकित प्रबंधन आवश्यक है।

खीरे की सफल खेती का आधार स्वस्थ फसल है, जिसे विभिन्न कीटों एवं रोगों से समय रहते बचाना आवश्यक है। वैज्ञानिक प्रबंधन अपनाने से उत्पादन हानि कम होती है और स्वस्थ उपज प्राप्त होती है। अतः अधिक एवं गुणवत्तायुक्त उत्पादन प्राप्त करने के लिए प्रमुख रोगों एवं कीटों की समय पर पहचान तथा उनका समेकित प्रबंधन अत्यंत आवश्यक है। खीरा फसल में प्रमुख रोगों एवं कीटों के प्रबंधन उपाय इस प्रकार हैं:

भाकृअनुप-राष्ट्रीय पादप आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, नई दिल्ली

समाधान

- पौध उत्पादन के लिए प्रो-ट्रे एवं रोगमुक्त कोकोपीट का उपयोग करें तथा प्रयुक्त ट्रे को 1% सोडियम हाइपोक्लोराइट से विसंक्रमित करें।
- पॉलीहाउस के वायु संचार द्वार पर कीटरोधी जाली लगाकर सफेद मक्खी, एफिड एवं थ्रिप्स जैसे कीटों के प्रवेश को रोकें।
- पॉलीहाउस में अधिक नमी एवं जलभराव से बचें तथा ड्रिप सिंचाई का प्रयोग करें।
- मृदा आधारित खेती में फसल लगाने से पूर्व 4-6 सप्ताह तक पारदर्शी पॉलीथीन से मृदा सौरीकरण करें।
- ट्राइकोडर्मा विरिडी अथवा ट्राइकोडर्मा हार्जिनियम 2.5 कि.ग्रा./हैक्टर को 50-100 कि.ग्रा. अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद में मिलाकर मृदा में प्रयोग करें।
- रोगग्रस्त पौधों को तुरंत हटाकर पॉलीहाउस से बाहर नष्ट करें तथा संक्रमित स्थान पर फफूंदनाशी घोल का ड्रेंचिंग करें।

डैम्पिंग ऑफः यह खीरा की नर्सरी एवं प्रारंभिक अवस्था का एक प्रमुख मृदाजनित रोग है। रोगग्रस्त बीज अंकुरण से पूर्व ही सड़ जाते हैं या अंकुरण के बाद पौधे भूमि सतह के पास तने के गलने के कारण गिर जाते हैं। प्रभावित पौधों का तना पतला जलसिक्त एवं कमजोर दिखाई देता है। रोग के अधिक प्रकोप से पौधों की संख्या में भारी कमी आ जाती है तथा पौध स्थापना प्रभावित होती है। **प्रबंधनः** बीजों का उपचार ट्राइकोडर्मा विरिडी 4-10 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज अथवा कैप्टॉन/थीरम 2-3 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज से करें। साथ ही रोग की प्रारंभिक अवस्था में मेटालेक्सिल 8% + मैंकोजेब 64% डब्ल्यूपी 2 ग्राम प्रति लीटर पानी अथवा प्रोपामोकार्ब

पत्तियों पर चूर्णिल आसिता रोग के लक्षण

हाइड्रोक्लोराइड 72-2 एस.एल. 2-3 मि.ली. प्रति लीटर पानी की दर से जड़ क्षेत्र में ड्रेंचिंग करें।

चूर्णिल आसिता: इस रोग के प्रारंभ में पत्तियों, तनों एवं बेलों पर सफेद चूर्ण जैसे छोटे-छोटे धब्बे दिखाई देते हैं। बाद में ये धब्बे बढ़कर पूरी पत्ती को ढक लेते हैं। अधिक प्रकोप होने पर पत्तियाँ पीली पड़कर सूख जाती हैं तथा फल उत्पादन एवं गुणवत्ता प्रभावित होती है।

प्रबंधन: रोग की प्रारंभिक अवस्था में घुलनशील गंधक 2-3 ग्राम प्रति लीटर पानी का छिड़काव करें या फिर कैराथेन 48 ईसी 0.5 मि.ली. प्रति लीटर पानी का छिड़काव करें। अधिक प्रकोप होने पर हैक्साकोनाजोल 5 ईसी 1 मि.ली. प्रति लीटर पानी अथवा डाइफेनोकोनाजोल 25 ईसी 0.5 मि.ली. प्रति लीटर पानी का छिड़काव करें। आवश्यकता अनुसार 10-12 दिनों के अंतराल पर छिड़काव दोहराएँ।

उकठा रोग या फ्यूजेरियम विल्ट: यह एक मृदाजनित रोग है, जो पौधों की संवहनी प्रणाली को प्रभावित करता है। रोग के प्रारंभ में निचली पत्तियाँ पीली पड़ने लगती हैं तथा पौधे दिन के समय मुरझाए हुए दिखाई देते हैं। धीरे-धीरे पूरा पौधा स्थायी रूप से मुरझा जाता है। तने को लंबाई में चीरने पर संवहनी ऊतक भूरे रंग के दिखाई देते हैं। अधिक प्रकोप होने पर पौधे सूखकर मर जाते हैं तथा फल उत्पादन में भारी कमी आती है।

उकठा रोग के लक्षण

प्रबंधन: रोग की प्रारंभिक अवस्था में कार्बेण्डाजिम 50 डब्ल्यूपी 1 ग्राम प्रति लीटर पानी अथवा कार्बेण्डाजिम 12% + मैंकोजेब 63% डब्ल्यूपी 2 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से जड़ क्षेत्र में ड्रेंचिंग करें।

कीट प्रबंधन

इल्ली: विभिन्न प्रकार की इल्लियाँ पत्तियों, कोमल तनों, फूलों एवं नव विकसित फलों को खाकर नुकसान पहुँचाती हैं। प्रारंभिक अवस्था में पत्तियों पर छोटे-छोटे छेद दिखाई देते हैं, जबकि अधिक प्रकोप होने पर पत्तियाँ छलनी जैसी दिखाई देने लगती हैं। गंभीर स्थिति में पौधों की वृद्धि रुक जाती है तथा फलन प्रभावित होता है।

खीरे की पत्तियों पर इल्ली का प्रकोप

प्रबंधन: अंड समूहों एवं इल्लियों को एकत्रित कर नष्ट करें। फेरोमोन ट्रैप 10-12 प्रति हैक्टर लगाएँ। नीम बीज अर्क 5% अथवा एजाडिरैक्टिन 1500 पीपीएम 3-5 मि.ली. प्रति लीटर पानी का छिड़काव करें। अधिक प्रकोप होने पर स्पिनोसैड 45 एससी 0.3 मि.ली. प्रति लीटर पानी अथवा इमामेक्टिन बेन्जोएट 5 एसजी 0.4 ग्राम प्रति लीटर पानी का छिड़काव करें।

लाल कद्दू भृंग: यह कद्दूवर्गीय फसलों का एक प्रमुख कीट है। इसके वयस्क पत्तियों, बीजपत्रों एवं कोमल भागों को खाकर अनियमित छेद बना देते हैं। अधिक प्रकोप

मृदुरोमिल आसिता

इस रोग के प्रारंभ में पत्तियों की ऊपरी सतह पर नसों द्वारा सीमित कोणीय पीले धब्बे दिखाई देते हैं। अनुकूल परिस्थितियों में पत्तियों की निचली सतह पर धूसर-बैंगनी रंग की फफूंदीय वृद्धि विकसित होती है। रोग के बढ़ने पर पत्तियाँ भूरी होकर सूख जाती हैं तथा समय से पूर्व झड़ने लगती हैं, जिससे फल उत्पादन प्रभावित होता है।

पत्तियों पर रोग के लक्षण

प्रबंधन: रोग की प्रारंभिक अवस्था में मेटालेक्सिल + मैंकोजेब 72 डब्ल्यूपी 2 ग्राम प्रति लीटर पानी अथवा साइमोक्सानिल + मैंकोजेब 2 ग्राम प्रति लीटर पानी का छिड़काव करें। आवश्यकता अनुसार 10-15 दिनों के अंतराल पर छिड़काव दोहराएँ।

थ्रिप्स

ये कीट पत्तियों, कलियों एवं कोमल भागों से रस चूसते हैं। प्रभावित पत्तियों पर चांदी जैसी चमक दिखाई देती है तथा पत्तियाँ मुड़कर सिकुड़ जाती हैं। अधिक प्रकोप होने पर पौधों की वृद्धि रुक जाती है, फूल झड़ने लगते हैं तथा फलन प्रभावित होता है। यह कीट कई विषाणुजनित रोगों के प्रसार में भी सहायक होता है।

प्रबंधन: निगरानी हेतु 25-50 प्रति हैक्टर नीले चिपचिपे ट्रैप लगाएँ। नीम बीज अर्क का छिड़काव करें। अधिक प्रकोप होने पर स्पिनोसैड 45 एससी 0.3 मि.ली. प्रति लीटर पानी अथवा फिप्रोनिल 5 एससी 1 मि.ली. प्रति लीटर पानी का छिड़काव करें।

होने पर नवांकुर एवं छोटे पौधे पूरी तरह नष्ट हो सकते हैं। पौधों की बढ़वार प्रभावित होती है तथा पौध संख्या में कमी आ सकती है।

पत्तियों पर लाल कद्दू भृंग का प्रकोप

प्रबंधनः प्रारंभिक अवस्था में वयस्क भृंगों एवं अंडों को एकत्रित कर नष्ट करें। साथ ही नीम बीज अर्क का छिड़काव करें। वहीँ अधिक प्रकोप होने पर लैम्ब्डा-सायहेलोथ्रिन 5 ईसी 0.5 मि.ली. प्रति लीटर पानी अथवा साइपरमेथ्रिन 25 ईसी 0.5 मि.ली. प्रति लीटर पानी का छिड़काव करें।

माइट्सः ये कीट पत्तियों की निचली सतह से रस चूसते हैं, जिससे पत्तियों पर छोटे-छोटे पीले धब्बे दिखाई देते हैं। अधिक प्रकोप होने पर पत्तियाँ कांस्य रंग की होकर सूखने लगती हैं तथा उन पर महीन जाले दिखाई देते हैं। प्रभावित पौधों की वृद्धि, पुष्पण एवं फलन प्रभावित हो जाते हैं।

प्रबंधनः नीम तेल 2-3 मि.ली. प्रति लीटर पानी का छिड़काव करें। अधिक प्रकोप होने पर प्रोपरगाइट 57 ईसी 2 मि.ली. प्रति लीटर पानी अथवा स्पाइरोमेसिफेन 22.9 एससी 1 मि.ली. प्रति लीटर पानी का छिड़काव करें। आवश्यकता पड़ने पर 10-15 दिनों के अंतराल पर छिड़काव दोहराएँ।

विषाणु जनित रोगः रोगग्रस्त पौधों में पत्तियाँ ऊपर या नीचे की ओर मुड़ जाती हैं तथा मोजैक एवं विकृति के लक्षण दिखाई देते हैं। पौधे बौने रह जाते हैं, फूल एवं फल कम बनते हैं तथा फल विकृत हो सकते हैं। प्रारंभिक संक्रमण की स्थिति में उपज में भारी कमी आ सकती है।

प्रबंधनः रोगमुक्त बीज एवं स्वस्थ पौधों का उपयोग करें। रोगग्रस्त पौधों को तुरंत उखाड़कर नष्ट करें। सफेद मक्खी की नियमित निगरानी एवं नियंत्रण करें। साथ ही पीले चिपचिपे ट्रैप 20-25 प्रति हैक्टर लगाएँ। सफेद मक्खी के नियंत्रण हेतु इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एसएल 0.3 मि.ली. प्रति लीटर पानी अथवा थियामेथोक्साम 25 डब्ल्यूजी 0.25 ग्राम प्रति लीटर पानी का छिड़काव करें।

पत्तियों पर विषाणु जनित रोग

माइट के गंभीर प्रकोप से फसल की हानि

जड़गाँठ सूत्रकृमि के कारण खीरे की जड़ों पर गाँठों का निर्माण

जड़ गाँठ सूत्रकृमिः यह सूत्रकृमि जड़ों पर छोटी-बड़ी गांठें (गॉल) बनाता है, जिससे जड़ तंत्र कमजोर हो जाता है। प्रभावित पौधे बौने रह जाते हैं, पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं तथा पोषक तत्वों की कमी के लक्षण दिखाई देते हैं। अधिक प्रकोप होने पर पौधे मुरझाने लगते हैं तथा फल उत्पादन में भारी कमी आती है।

प्रबंधनः स्वस्थ एवं रोगमुक्त पौध सामग्री का उपयोग करें। नीम खली 500-1000 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर मृदा में मिलाएँ। साथ ही पेसिलोमाइसिस लिलासिनस 2.5 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर को गोबर की खाद में मिलाकर प्रयोग करें। साथ ही ट्राइकोडर्मा आधारित जैव उत्पादों का उपयोग करें। अधिक प्रकोप की स्थिति में फ्लुएन्सल्फोन 480 ईसी / 2 मि.ली. प्रति लीटर पानी की दर से ड्रेंचिंग अथवा ड्रिप सिंचाई के माध्यम से प्रयोग करें। ■

बागवानी आधारित एकीकृत कृषि प्रणाली से लाभ वृद्धि

नूपुर शर्मा[1], **बी. एल. मीणा**[2], **बी. एल. ढाका**[3], **जगदीश प्रसाद तेतरवाल**[4] और **वर्षा गुप्ता**[5]

राजस्थान का सवाई माधोपुर जिला कृषि-जलवायु क्षेत्र 3-बी में स्थित है और लगभग 15,000 हैक्टर क्षेत्र में अमरूद की खेती होने के कारण "अमरूद की नगरी" के नाम से प्रसिद्ध है। इसी जिले के प्रगतिशील किसान श्री देवराज सिंह राजावत ने 8 हैक्टर क्षेत्र में बागवानी-आधारित एकीकृत कृषि प्रणाली का सफल मॉडल विकसित किया है। इस मॉडल में 3 हैक्टर में अमरूद, 2 हैक्टर में आंवला, 2 हैक्टर में प्रमुख फसलें तथा 0.5-0.5 हैक्टर में सब्जियाँ एवं हरा चारा उगाया जाता है। इसके साथ डेयरी, वर्मीकम्पोस्ट, जैविक उर्वरकों का उपयोग, वर्षाजल संरक्षण, सूक्ष्म तथा सौर ऊर्जा आधारित सिंचाई को समन्वित रूप से अपनाया गया है। इस प्रणाली से उत्पादन लागत और रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम हुई, जबकि फसल विविधीकरण, रोग प्रबंधन तथा संसाधनों के उपयोग में सुधार हुआ। वर्ष 2018-2025 के दौरान अमरूद बाग से लगभग 2.25 लाख रुपये की लागत पर 5 लाख रुपये का लाभ प्राप्त हुआ। वर्तमान में यह मॉडल प्रतिवर्ष 8-9 लाख रुपये की शुद्ध आय देकर सतत एवं लाभकारी कृषि का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है।

राजस्थान के कृषि-जलवायु क्षेत्र 3-बी में बागवानी-आधारित एकीकृत कृषि प्रणाली की स्थिरता और लाभप्रदता-सफलता की कहानी बागवानी, फसल उत्पादन और पशुपालन के समन्वय से विकसित एकीकृत कृषि प्रणाली किसानों की आय बढ़ाने का प्रभावी माध्यम बन रही है। सवाई माधोपुर के प्रगतिशील किसान श्री देवराज सिंह राजावत का कृषि मॉडल इसका उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है।

विषयवस्तु विशेषज्ञ , सस्य विज्ञान[1], वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष[2], प्राध्यापक, प्रसार शिक्षा[3], प्राध्यापक, सस्य विज्ञान[4], सहायक प्राध्यापक, सस्य विज्ञान[5], कृषि विज्ञान केंद्र, सवाईमाधोपुर, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा

एकीकृत कृषि प्रणाली के प्रमुख घटक

बागवानी एवं फसल उत्पादन: एकीकृत कृषि प्रणाली के अंतर्गत कुल 5 हैक्टर क्षेत्र में फलोद्यान विकसित किया गया है, जिसमें 3 हैक्टर में अमरूद (किस्म-बर्फ खान गोला) के लगभग 1,000 पौधे तथा 2 हैक्टर में आंवला (किस्म-चकैया) के लगभग 400 पौधे लगाए गए हैं। इसके अतिरिक्त 2 हैक्टर क्षेत्र में बाजरा, उड़द, सरसों, गेहूं तथा ग्रीष्मकालीन मूंग की खेती की जाती है। उन्नत किस्मों जैसे कोटा उड़द-4, बीपीएम-11, जैव संवर्धित गेहूं डीबीडब्ल्यू-371 तथा मूंग की विराट किस्म का उपयोग किया जाता है। बीज उपचार, समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन एवं समन्वित कीट प्रबंधन जैसी वैज्ञानिक तकनीकों के प्रयोग से तीनों मौसमों को मिलाकर लगभग 1.45 लाख रुपये की वार्षिक शुद्ध आय प्राप्त हो रही है।

सब्जी उत्पादन: लगभग 0.5 हैक्टर क्षेत्र में गाजर, पालक, गोभी, चुकंदर आदि सब्जियों की वैज्ञानिक पद्धति से खेती की जाती है। उन्नत किस्मों, संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन

एवं सूक्ष्म सिंचाई तकनीकों के उपयोग से गुणवत्तापूर्ण उत्पादन प्राप्त होता है। इससे परिवार की सब्जियों की आवश्यकता पूरी होने के साथ स्थानीय बाजार में विक्रय से अतिरिक्त आय भी प्राप्त होती है।

चारा उत्पादन: पशुपालन की पोषण आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए 0.5 हैक्टर क्षेत्र में नेपियर घास, जई एवं बरसीम जैसी उन्नत चारा फसलें उगाई जाती हैं। खेत पर उत्पादित हरे चारे से पशुओं को वर्षभर संतुलित आहार उपलब्ध होता है, जिससे दुग्ध उत्पादन एवं पशु स्वास्थ्य में सुधार होने के साथ बाहरी चारे पर निर्भरता और उत्पादन लागत दोनों में कमी आती है।

वर्षा जल संरक्षण एवं सूक्ष्म सिंचाई: जल संसाधनों के कुशल प्रबंधन के लिए खेत पर 100 × 100 मीटर आकार का फार्म तालाब विकसित किया गया है, जिसमें वर्षा जल का संचयन किया जाता है। इस जल का उपयोग सूक्ष्म एवं बूंद-बूंद सिंचाई प्रणाली के माध्यम से बागवानी, फसलों एवं सब्जियों की सिंचाई में किया जाता है। इससे जल उपयोग दक्षता में 30-40 प्रतिशत वृद्धि तथा सिंचाई लागत में 20-25 प्रतिशत की कमी दर्ज की गई है। साथ ही भूजल पर निर्भरता घटने से वर्षभर सिंचाई जल की उपलब्धता सुनिश्चित हुई है, जिससे कृषि प्रणाली की उत्पादकता, लाभप्रदता एवं स्थिरता में वृद्धि हुई है।

डेयरी इकाई एवं जैविक आदान उत्पादन: एकीकृत कृषि प्रणाली के अंतर्गत एक देसी गाय पर आधारित डेयरी इकाई स्थापित की गई है।

गाय से प्राप्त गोबर एवं गौमूत्र का उपयोग वर्मीकम्पोस्ट तथा जीवामृत जैसे जैविक आदानों को तैयार करने में किया जाता है। इनका प्रयोग फसलों एवं फलोद्यान में करने से मृदा की उर्वराशक्ति, जैविक कार्बन एवं सूक्ष्मजीव गतिविधि में वृद्धि हुई है। साथ ही, रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता घटने से उत्पादन लागत में कमी आई है।

इस प्रकार, डेयरी एवं फसल उत्पादन का समन्वय संसाधनों के पुनर्चक्रण को बढ़ावा देता है तथा कृषि प्रणाली को अधिक आत्मनिर्भर एवं टिकाऊ बनाता है।

सौर ऊर्जा एवं ऊर्जा संरक्षण: ऊर्जा लागत कम करने तथा सिंचाई को सुगम बनाने के लिए खेत पर सौर ऊर्जा पैनल स्थापित किए गए हैं। इनके माध्यम से सिंचाई पम्प एवं अन्य कृषि कार्यों हेतु आवश्यक विद्युत उपलब्ध करवाई जाती है। सौर ऊर्जा के उपयोग से डीजल एवं परंपरागत बिजली पर निर्भरता कम हुई है, जिससे ऊर्जा खपत में लगभग 40-50 प्रतिशत तथा वार्षिक ऊर्जा व्यय में 35,000-45,000 रुपये तक की बचत हुई है। साथ ही, सूक्ष्म एवं बूंद-बूंद सिंचाई प्रणाली के समन्वित उपयोग से जल एवं ऊर्जा दोनों का दक्षतापूर्वक उपयोग सुनिश्चित हुआ है।

भंडारण एवं विपणन सुविधा: एकीकृत कृषि प्रणाली को बाजारोन्मुख बनाने के लिए किसान ने खेत पर भंडारण गृह की व्यवस्था विकसित की है। इसमें मुख्यत: प्याज एवं लहसुन जैसी फसलों का सुरक्षित भंडारण किया जाता है। इससे फसल को तत्काल बेचने की आवश्यकता नहीं रहती और अनुकूल बाजार मूल्य मिलने पर विपणन किया जा सकता है। परिणामस्वरूप कटाई उपरान्त हानियों में कमी, विपणन में लचीलापन तथा किसानों की शुद्ध आय में वृद्धि होती है।

इस प्रकार यह बागवानी-आधारित एकीकृत कृषि प्रणाली मॉडल संसाधनों के समन्वित एवं सतत उपयोग का सफल उदाहरण है। बागवानी, फसल एवं सब्जी उत्पादन, हरा चारा, डेयरी, जैविक आदान, वर्षा जल संरक्षण, सूक्ष्म सिंचाई तथा सौर ऊर्जा के एकीकृत उपयोग से उत्पादन लागत में कमी, संसाधन उपयोग दक्षता में वृद्धि तथा आय के विविध स्रोत विकसित हुए हैं।

इस मॉडल ने रासायनिक उर्वरकों एवं बाहरी आदानों पर निर्भरता को कम करने के साथ मृदा स्वास्थ्य, जल संरक्षण और फसल विविधीकरण को भी बढ़ावा दिया है। परिणामस्वरूप किसानों की आय में काफी वृद्धि हुई है तथा कृषि प्रणाली अधिक लाभकारी, टिकाऊ और जलवायु अनुकूल बनी है। इसलिए यह मॉडल समान कृषि जलवायु परिस्थितियों वाले क्षेत्रों के किसानों के लिए एक व्यावहारिक, लाभप्रद एवं अनुकरणीय विकल्प सिद्ध हो सकता है।

आर्थिक विश्लेषण

बागवानी आधारित 8 हैक्टर एकीकृत कृषि प्रणाली आर्थिक दृष्टि से अत्यंत लाभकारी सिद्ध हुई है। वर्ष 2018 में अमरूद बाग की स्थापना पर लगभग ₹2.25 लाख की लागत आई थी, जबकि वर्ष 2025 में अमरूद एवं आंवला बाग से लगभग ₹6.50 लाख की वार्षिक आय प्राप्त हुई। इसके अतिरिक्त, 2 हैक्टर क्षेत्र में फसल उत्पादन से लगभग ₹1.65 लाख तथा 0.5 हैक्टर क्षेत्र में सब्जी उत्पादन से लगभग ₹25,000 की अतिरिक्त आय प्राप्त हुई। हरा चारा, डेयरी, जैविक आदान, वर्षा जल संरक्षण, सूक्ष्म सिंचाई एवं सौर ऊर्जा के समन्वित उपयोग से उत्पादन लागत में भारी कमी आई। इन सभी घटकों के संयुक्त प्रभाव से इस एकीकृत कृषि प्रणाली से प्रतिवर्ष लगभग ₹8-9 लाख की शुद्ध आय प्राप्त हो रही है, जो इसे किसानों के लिए लाभकारी, टिकाऊ एवं अनुकरणीय मॉडल बनाती है।

सारणी: बागवानी आधारित एकीकृत कृषि प्रणाली का आर्थिक विश्लेषण

घटक	विवरण
कुल क्षेत्रफल	8 हैक्टर
अमरूद बाग स्थापना वर्ष	2018
अमरूद बाग की प्रारंभिक लागत	₹2,25,000
अमरूद एवं आंवला बाग से वार्षिक आय (2025)	लगभग ₹6,50,000
फसल उत्पादन से शुद्ध आय (2 हैक्टर)	लगभग ₹1,65,000
सब्जी उत्पादन से अतिरिक्त आय	घरेलू उपयोग के साथ स्थानीय विक्रय से लगभग ₹25,000
हरा चारा उत्पादन का लाभ	बाहरी चारे पर निर्भरता में कमी
डेयरी एवं जैविक इनपुट का लाभ	उत्पादन लागत में कमी एवं मृदा स्वास्थ्य में सुधार
सौर ऊर्जा से वार्षिक बचत	₹35,000-45,000
जल संरक्षण से सिंचाई लागत में बचत	20-25%
कुल वार्षिक शुद्ध आय	लगभग ₹8-9 लाख

अवसर

पुष्पों के प्रसंस्करण से ग्रामीण उद्यमिता को बढ़ावा

अनामिका चौरसिया[1], **अंजना सिसोदिया**[2] और **अनिल कुमार सिंह**[3]

पुष्प प्रकृति की अनुपम देन हैं। भारतीय परंपरा में इनका उपयोग आयुर्वेद, यूनानी तथा लोक चिकित्सा पद्धतियों में प्राचीन काल से होता आ रहा है। ऋग्वेद, चरक संहिता और सुश्रुत संहिता जैसे प्राचीन ग्रंथों में अनेक औषधीय गुणों वाले पुष्पों का उल्लेख मिलता है। वर्तमान समय में जब रासायनिक दवाइओं के दुष्प्रभावों के प्रति लोगों में जागरूकता बढ़ रही है, तब प्राकृतिक एवं हर्बल उपचारों की ओर उनका रुझान लगातार बढ़ा है। ऐसे में औषधीय एवं खाद्य पुष्पों का महत्व पहले की अपेक्षा कहीं अधिक बढ़ गया है। यद्यपि पुष्पीय फसलें सामान्यत: सजावटी पौधों के रूप में जानी जाती हैं, किंतु आज इनकी उपयोगिता केवल सौंदर्य तक सीमित नहीं है। अनेक पुष्पों का उपयोग खाद्य उत्पादों, पेय, प्राकृतिक रंगों, फ्लेवरिंग एजेंटों, हर्बल तथा औषधीय उत्पादों में व्यापक रूप से किया जा रहा है। बदलती जीवनशैली, स्वास्थ्य के प्रति बढ़ती जागरूकता तथा प्राकृतिक और पौष्टिक उत्पादों की बढ़ती मांग ने खाद्य एवं औषधीय पुष्पों की खेती को नई पहचान दी है। ग्रामीण क्षेत्रों में सीमित भूमि वाले किसानों, छोटे एवं सीमांत कृषकों, महिला स्वयं सहायता समूहों तथा युवाओं के लिए औषधीय एवं खाद्य पुष्पों की खेती कम लागत में अधिक आय, मूल्य संवर्धन और सतत आजीविका का एक प्रभावी माध्यम बनकर उभर रही है।

आयुर्वेद के अनुसार अनेक पुष्पों में त्रिदोष (वात, पित्त और कफ) को संतुलित करने की क्षमता होती है। विभिन्न औषधीय पुष्पों से चूर्ण, काढ़ा, अर्क, तेल तथा अन्य आयुर्वेदिक औषधियाँ तैयार की जाती हैं। भारत में प्राचीन काल से आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति में पुष्पों का उपयोग रोगों की रोकथाम और उपचार के लिए किया जाता रहा है। अनेक पुष्पों में रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने, प्रतिरक्षा तंत्र को सुदृढ़ करने, सूजन कम करने तथा शरीर के प्राकृतिक संतुलन को बनाए रखने जैसे औषधीय गुण पाए जाते हैं।

[1]शोध छात्रा, [2]असिस्टेंट प्रोफेसर, [3]प्रोफेसर, उद्यानिकी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश

प्रमुख औषधीय पुष्पों के उपयोग

- **कमल:** इसके पुष्प का उपयोग मानसिक शांति, हृदय स्वास्थ्य तथा रक्त शुद्धि के लिए किया जाता है। आयुर्वेद में इसे शीतल, पित्तशामक एवं बलवर्धक माना गया है।
- **गेंदा:** इसके पुष्पों में एंटीसेप्टिक, एंटीबैक्टीरियल एवं सूजनरोधी गुण पाए जाते हैं। इसका उपयोग घाव भरने, सूजन कम करने तथा विभिन्न त्वचा रोगों के उपचार में किया जाता है।
- **चमेली:** इसके पुष्प सुगंध चिकित्सा (अरोमाथेरेपी) में व्यापक रूप से प्रयुक्त होते हैं। इनकी सुगंध तनाव, चिंता, अनिद्रा और मानसिक थकान को कम करने में सहायक मानी जाती है।
- **अपराजिता:** इसके पुष्प स्मरण शक्ति बढ़ाने, नेत्र स्वास्थ्य को बेहतर बनाने तथा तंत्रिका तंत्र को सुदृढ़ करने में उपयोगी माने जाते हैं। आयुर्वेद में इसका उपयोग अनेक औषधीय तैयारियों में किया जाता है।
- **नीलगिरी (यूकेलिप्टस):** नीलगिरी के पुष्पों एवं पत्तियों से प्राप्त आवश्यक

तेल का उपयोग सर्दी, खाँसी, दमा, ब्रोंकाइटिस तथा नाक बंद होने जैसी श्वसन संबंधी समस्याओं में किया जाता है। इसके जीवाणुरोधी गुणों के कारण इसका उपयोग टूथपेस्ट, माउथवॉश तथा अन्य मुख स्वास्थ्य उत्पादों में भी किया जाता है, जिससे दाँतों और मसूड़ों के संक्रमण से बचाव में सहायता मिलती है।

गुलाब पुष्पों का स्वादिष्ट गुलकंद

यूकेलिप्टस युक्त टूथपेस्ट

खाद्य पुष्पों का महत्व

खाद्य पुष्प वे पुष्प हैं जिनका उपयोग सुरक्षित रूप से ताजा अथवा प्रसंस्करित रूप में आहार एवं पेय उत्पादों में किया जाता है। ये न केवल प्राकृतिक रंग, सुगंध और स्वाद प्रदान करते हैं, बल्कि अनेक पोषक एवं जैव सक्रिय तत्वों से भरपूर होने के कारण स्वास्थ्यवर्धक भी होते हैं। वर्तमान समय में स्वास्थ्य के प्रति बढ़ती जागरूकता और प्राकृतिक उत्पादों की बढ़ती मांग के कारण खाद्य पुष्पों का उपयोग खाद्य एवं प्रसंस्करण उद्योग में तेजी से बढ़ रहा है।

प्रमुख खाद्य पुष्पों का उपयोग

गुलाबः गुलाब की पंखुड़ियों का उपयोग गुलकंद, शरबत, जैम, सिरप, मिठाइयों, गुलाब जल तथा विभिन्न खाद्य उत्पादों में प्राकृतिक फ्लेवरिंग एजेंट के रूप में किया जाता है।

अपराजिताः अपराजिता के नीले पुष्पों का उपयोग हर्बल चाय, प्राकृतिक खाद्य रंग तथा स्वास्थ्यवर्धक पेय तैयार करने में किया जाता है। इसके एंटीऑक्सीडेंट गुण इसे विशेष महत्व प्रदान करते हैं।

गुलदाउदीः गुलदाउदी के पुष्पों से हर्बल चाय तैयार की जाती है। इनमें एंटीऑक्सीडेंट एवं सूजनरोधी गुण पाए जाते हैं, जो प्रतिरक्षा तंत्र को सुदृढ़ बनाने में सहायक माने जाते हैं।

गेंदाः गेंदा के पुष्पों का उपयोग खाद्य उद्योग में प्राकृतिक रंग तथा ल्यूटिन जैसे महत्वपूर्ण पोषक तत्वों के स्रोत के रूप में किया जाता है। ल्यूटिन नेत्र स्वास्थ्य के लिए लाभकारी माना जाता है।

केवड़ाः यह एक सुगंधित पुष्पीय फसल है, जिसके पुष्पों से प्राप्त अर्क का उपयोग मिठाइयों, पेय उत्पादों, शरबत तथा विभिन्न खाद्य उत्पादों में प्राकृतिक फ्लेवर और सुगंध प्रदान करने के लिए किया जाता है।

उत्पादन तकनीक

औषधीय एवं खाद्य पुष्पों की अधिकांश फसलें अच्छी जल निकास वाली उपजाऊ दोमट मृदा में बेहतर उत्पादन देती हैं। सफल खेती के लिए उपयुक्त जलवायु, गुणवत्तापूर्ण रोपण सामग्री, संतुलित पोषक प्रबंधन, समय पर सिंचाई, खरपतवार एवं कीट-रोग प्रबंधन तथा वैज्ञानिक कृषि तकनीकों का पालन आवश्यक है। उचित देखभाल और वैज्ञानिक प्रबंधन अपनाकर किसान गुणवत्तापूर्ण उत्पादन प्राप्त कर अधिक लाभ अर्जित कर सकते हैं।

सारणी 1. प्रमुख औषधीय एवं खाद्य पुष्पों का उत्पादन एवं उपयोग

फसल	उपयुक्त जलवायु	उपयुक्त मिट्टी	प्रवर्धन विधि	रोपण समय	पुष्प तुड़ाई	प्रमुख उपयोग
गुलाब	समशीतोष्ण से उपोष्ण	दोमट, पीएच 6.0-7.0	बडिंग (कलिकायन) अथवा कलम	अक्तूबर-नवंबर	रोपण के 4-5 माह बाद	गुलकंद, शरबत, गुलाब जल, इत्र
कमल	गर्म एवं आर्द्र	कीचड़युक्त जलीय मिट्टी	प्रकंद	फरवरी-मार्च	जून-सितंबर	खाद्य, औषधीय एवं धार्मिक उपयोग
गेंदा	हल्की ठंडी से गर्म	दोमट, पीएच 6.5-7.5	बीज	जुलाई-अगस्त	रोपण के 45-60 दिनों बाद	पूजा, औषधीय उपयोग, प्राकृतिक रंग
चमेली	गर्म एवं आर्द्र	उपजाऊ दोमट	कलम अथवा लेयरिंग	जून-जुलाई	रोपण के 6-8 माह बाद	इत्र एवं औषधीय उपयोग
अपराजिता	गर्म	हल्की दोमट	बीज	जून-जुलाई	रोपण के 60-70 दिनों बाद	हर्बल चाय, प्राकृतिक रंग
गुलदाउदी	हल्की ठंडी	दोमट, पीएच 6.0-6.5	सकर एवं कटिंग	जून-जुलाई	नवंबर-दिसंबर	सजावटी एवं औषधीय उपयोग
केवड़ा	गर्म एवं तटीय	बलुई दोमट	सकर अथवा कटिंग	वर्षा ऋतु	रोपण के 3-4 वर्ष बाद	इत्र एवं खाद्य फ्लेवर
यूकेलिप्टस	उपोष्णकटिबंधीय	हल्की काली मिट्टी, पीएच 5.5-7.5	बीज अथवा कटिंग	जुलाई-अगस्त	रोपण के 2-3 वर्ष बाद	औषधीय तेल एवं कागज उद्योग

महिला एवं युवा सशक्तिकरण

स्वयं सहायता समूहः महिलाएँ समूह बनाकर पुष्पों की खेती, सुखाने, प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन का कार्य कर सकती हैं, जिससे सामूहिक आय एवं आत्मनिर्भरता में वृद्धि होती है।

प्रशिक्षण एवं सूक्ष्म प्रसंस्करण इकाइयाँः अल्पकालीन प्रशिक्षण के माध्यम से गुलकंद, पुष्प चाय, अर्क, साबुन आदि का निर्माण कर स्थानीय स्तर पर रोजगार सृजित किया जा सकता है।

स्टार्ट-अपः नवाचार आधारित स्टार्ट-अप पुष्पों पर आधारित न्यूट्रास्युटिकल, कॉस्मेटिक एवं सुगंधित उत्पाद विकसित कर उद्यमिता को बढ़ावा दे रहे हैं।

नर्सरीः गुणवत्तापूर्ण पौध सामग्री का उत्पादन एवं बिक्री ग्रामीण युवाओं के लिए स्थायी आय का अच्छा स्रोत बन सकती है।

जैविक उत्पादनः जैविक पद्धति से पुष्पों का उत्पादन करने पर उत्पादों का मूल्य तथा बाजार मांग दोनों बढ़ते हैं।

प्राकृतिक रंग एवं अर्क

मूल्य संवर्धन एवं प्रसंस्करण

खाद्य एवं औषधीय पुष्प केवल स्वास्थ्य लाभ तक सीमित नहीं हैं, बल्कि मूल्य संवर्धन के माध्यम से ग्रामीण उद्यमिता और आय बढ़ाने का प्रभावी साधन भी बन रहे हैं। इन पुष्पों से अनेक प्रकार के खाद्य एवं स्वास्थ्यवर्धक उत्पाद तैयार किए जाते हैं, जिनकी मांग स्थानीय बाजार के साथ-साथ शहरी उपभोक्ताओं और ऑनलाइन प्लेटफॉर्म पर भी लगातार बढ़ रही है।

कम निवेश में लघु प्रसंस्करण इकाइयाँ स्थापित कर किसान, महिला स्वयं सहायता समूह तथा ग्रामीण युवा अतिरिक्त आय अर्जित कर सकते हैं।

गुलाब की पंखुड़ियों से गुलकंद तैयार किया जाता है, जिसके लिए मुख्य रूप से रोजा डमासेना और रोजा सेंटिफोलिया की किस्मों का उपयोग किया जाता है। आयुर्वेद में गुलकंद को शीतल, पाचन में सहायक तथा कब्ज, अम्लता और मुख के छालों से राहत प्रदान करने वाला उत्पाद माना गया है। इसकी मांग औषधीय एवं खाद्य दोनों क्षेत्रों में बनी रहती है।

सारणी 2. प्रमुख खाद्य एवं औषधीय पुष्पों के जैव सक्रिय यौगिक एवं स्वास्थ्य लाभ

पुष्प	प्रमुख जैव-सक्रिय यौगिक	प्रमुख स्वास्थ्य लाभ
गुलाब	पॉलीफेनॉल, फ्लैवोनॉयड, विटामिन सी	एंटीऑक्सीडेंट, शीतल, पाचन में सहायक
अपराजिता	एंथोसाइनिन	मस्तिष्क स्वास्थ्य के लिए लाभकारी, एंटीऑक्सीडेंट एवं एंटी एजिंग गुण
कैलेंडुला	कैरोटेनॉयड्स, फ्लैवोनॉयड	नेत्र एवं त्वचा स्वास्थ्य के लिए लाभकारी, सूजनरोधी
गुलदाउदी	फिनॉलिक यौगिक, फ्लैवोनॉयड	एंटीऑक्सीडेंट, प्रतिरक्षा बढ़ाने एवं शरीर के विषैले तत्वों के निष्कासन (डिटॉक्स) में सहायक
लैवेंडर	आवश्यक तेल (लिनालूल, लिनालाइल एसीटेट)	तनाव कम करने, मानसिक शांति एवं बेहतर नींद में सहायक
चमेली	वाष्पशील तेल, फ्लैवोनॉयड	मानसिक शांति, तनाव कम करने तथा हल्के एंटीसेप्टिक गुण

इसी प्रकार पुष्प चाय एवं हर्बल पेय भी तेजी से लोकप्रिय हो रहे हैं। अपराजिता, गुलाब, चमेली, गुलदाउदी, केवड़ा तथा गेंदा जैसे पुष्पों से तैयार हर्बल चाय प्राकृतिक, कैफीन मुक्त, कम कैलोरी एवं एंटीऑक्सीडेंट से भरपूर होती है। स्वास्थ्य के प्रति बढ़ती जागरूकता के कारण इन उत्पादों का बाजार निरंतर विस्तार कर रहा है।

प्राकृतिक रंग एवं अर्कः औषधीय एवं खाद्य पुष्प प्राकृतिक रंगों एवं अर्क के उत्कृष्ट स्रोत हैं। इनसे प्राप्त रंगद्रव्य खाद्य उद्योग, पेय उत्पादों, मिठाइयों, बेकरी उत्पादों, कॉस्मेटिक्स तथा औषधीय उत्पादों में सुरक्षित प्राकृतिक रंग के रूप में उपयोग किए जाते हैं। कृत्रिम रंगों के प्रति बढ़ती सावधानी और प्राकृतिक उत्पादों की बढ़ती मांग के कारण इन पुष्पों का व्यावसायिक महत्व लगातार बढ़ रहा है। इन पुष्पों में केसर, गुलाब, अपराजिता, गुलदाउदी, कैलेंडुला एवं गेंदा आदि शामिल हैं।

न्यूट्रास्युटिकल महत्वः औषधीय एवं खाद्य पुष्पों में पाए जाने वाले जैव-सक्रिय यौगिक, जैसे कैरोटेनॉयड्स (ल्यूटिन एवं जिएक्सैंथिन), आंखों के स्वास्थ्य, त्वचा की सुरक्षा तथा दृष्टि क्षमता बनाए रखने में सहायक होते हैं। वहीं फ्लैवोनॉयड्स और पॉलीफेनॉल जैसे यौगिक शक्तिशाली एंटीऑक्सीडेंट के रूप में कार्य करते हैं, जो प्रतिरक्षा तंत्र को सुदृढ़ बनाने, कोशिकाओं को ऑक्सीडेटिव क्षति से बचाने तथा बढ़ती आयु

सारणी 3. प्रमुख पुष्पों से प्राप्त प्राकृतिक रंग एवं रंगद्रव्य

पुष्प	प्राप्त प्राकृतिक रंग	प्रमुख रंगद्रव्य
अपराजिता	नीला से बैंगनी	एंथोसाइनिन
गेंदा	पीला से नारंगी	कैरोटेनॉयड एवं ल्यूटिन
गुलाब	गुलाबी से लाल	एंथोसाइनिन एवं पॉलीफेनॉल
गुलदाउदी	हल्का पीला	फ्लैवोनॉयड
केसर	सुनहरा पीला	क्रोसीन एवं क्रोसेटिन
कैलेंडुला	पीला से नारंगी	कैरोटेनॉयड

के प्रभावों (एंटी एजिंग) को कम करने में मदद करते हैं।

महत्व: पुष्पों से प्राप्त प्राकृतिक रंग एवं अर्क खाद्य उत्पादों को आकर्षक रंग, स्वाद और सुगंध प्रदान करने के साथ-साथ शरीर में ऑक्सीडेटिव स्ट्रेस को कम करने में भी सहायक होते हैं। यही कारण है कि इनका उपयोग खाद्य, औषधीय, न्यूट्रास्युटिकल तथा कॉस्मेटिक उद्योगों में तेजी से बढ़ रहा है।

हर्बल कॉस्मेटिक्स: औषधीय पुष्पों से तैयार हर्बल कॉस्मेटिक्स प्राकृतिक सौंदर्य प्रसाधनों के रूप में तेजी से लोकप्रिय हो रहे हैं। गुलाब, अपराजिता, गुलदाउदी, कैलेंडुला, चमेली तथा लैवेंडर जैसे पुष्पों से फेस पैक, हर्बल साबुन, फेस मिस्ट, क्रीम, बॉडी लोशन तथा आवश्यक तेल आधारित त्वचा देखभाल उत्पाद तैयार किए जाते हैं।

इनमें मौजूद प्राकृतिक एंटीऑक्सीडेंट, फ्लैवोनॉयड्स एवं आवश्यक तेल त्वचा को पोषण प्रदान करने, नमी बनाए रखने, सूजन कम करने तथा त्वचा को स्वस्थ और चमकदार बनाए रखने में सहायक होते हैं। प्राकृतिक एवं रसायनमुक्त उत्पादों की बढ़ती मांग के कारण हर्बल कॉस्मेटिक्स ग्रामीण स्तर पर मूल्य संवर्धन और स्वरोजगार का एक आकर्षक विकल्प बनकर उभर रहे हैं।

इत्र, अगरबत्ती एवं सुगंधित उत्पाद

रजनीगंधा, कमल, गुलाब, चमेली, केवड़ा तथा लैवेंडर जैसे सुगंधित पुष्पों का उपयोग प्राचीन काल से इत्र, गुलाब जल, अगरबत्ती, धूप, अरोमा उत्पाद तथा अन्य सुगंधित वस्तुओं के निर्माण में किया जाता रहा है। प्रत्येक पुष्प अपनी विशिष्ट सुगंध के कारण अलग पहचान रखता है। गुलाब और चमेली मधुर एवं आकर्षक सुगंध, केवड़ा पुष्पीय महक, रजनीगंधा गहरी एवं लंबे समय तक बनी रहने वाली सुगंध, लैवेंडर मानसिक शांति प्रदान करने वाले अरोमा तथा कमल अपनी सौम्य एवं दिव्य सुगंध के लिए प्रसिद्ध हैं।

अपराजिता हर्बल चाय

इन पुष्पों से तैयार उत्पाद प्राकृतिक सुगंध के साथ अरोमाथेरेपी, वेलनेस और न्यूट्रास्युटिकल उद्योगों में भी महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं, जिससे इनका व्यावसायिक महत्व निरंतर बढ़ रहा है।

शुष्क पुष्पों से अवसर

इसके अतिरिक्त, सूखे पुष्पों (ड्राई फ्लॉवर) का उपयोग खाद्य उद्योग और पाक कला में भी बढ़ रहा है। होटल, रेस्तरां और बेकरी उद्योग में शेफ सलाद, मिठाइयों और विभिन्न व्यंजनों की सजावट के लिए सूखे खाद्य पुष्पों का प्रयोग करते हैं। सलाद की सजावट में गुलाब, अपराजिता, गुलदाउदी, कैलेंडुला तथा लैवेंडर का उपयोग किया जाता है, जबकि मिठाइयों एवं मिष्ठानों को आकर्षक बनाने के लिए गुलाब, गेंदा, चमेली, लैवेंडर और कॉर्नफ्लावर का प्रयोग किया जाता है। इन पुष्पों से न केवल व्यंजनों का सौंदर्य बढ़ता है, बल्कि उनमें प्राकृतिक रंग, सुगंध और पौष्टिकता भी जुड़ती है। सूखे खाद्य पुष्प केवल सजावटी नहीं बल्कि इनका उपयोग सलाद, मिठाइयाँ एवं मिष्ठान में और स्वास्थ्य, सौंदर्य कृत्रिम रंगों, फाइन डाइनिंग, बेकरी और होटल उद्योग में किया जाता है। इस प्रकार खाद्य एवं औषधीय पुष्पों का प्रसंस्करण किसानों और ग्रामीण उद्यमियों के लिए मूल्य संवर्धन, स्वरोजगार और बेहतर आय का एक सशक्त माध्यम बनकर उभर रहा है।

विपणन एवं उद्यमिता मॉडल

औषधीय एवं खाद्य पुष्पों से बने प्राकृतिक, जैविक एवं स्वास्थ्यवर्धक उत्पादों की मांग तेजी से बढ़ रही है। ये उत्पाद आयुष उद्योग, होटल-रेस्तरां, आयुर्वेदिक फार्मेसी, ऑनलाइन प्लेटफॉर्म तथा निर्यात बाजार में व्यापक संभावनाएँ रखते हैं। उचित पैकेजिंग, गुणवत्ता नियंत्रण, जैविक अथवा आयुष प्रमाणन तथा प्रभावी ब्रांडिंग के माध्यम से 'वोकल फॉर लोकल' के अंतर्गत ग्रामीण उत्पाद भी राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान बना रहे हैं।

औषधीय एवं खाद्य पुष्पों की खेती ग्रामीण क्षेत्रों में आजीविका संवर्धन एवं उद्यमिता विकास का एक प्रभावी माध्यम बनकर उभरी है। गुलाब, गेंदा, चमेली, अपराजिता, गुलदाउदी, कमल एवं केवड़ा जैसे पुष्प न केवल कम भूमि और सीमित संसाधनों में उगाए जा सकते हैं, बल्कि इनके माध्यम से हर्बल चाय, प्राकृतिक रंग, गुलकंद, इत्र तथा सूखे पुष्प जैसे मूल्य संवर्धित उत्पाद तैयार कर किसानों की आय में उल्लेखनीय वृद्धि की जा सकती है। यह क्षेत्र छोटे एवं सीमांत किसानों, महिला स्वयं सहायता समूहों तथा ग्रामीण युवाओं के लिए स्थायी स्वरोजगार के अवसर प्रदान करने के साथ-साथ ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सशक्त बनाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। ■

सारणी 4. हर्बल कॉस्मेटिक्स में प्रमुख पुष्पों का उपयोग एवं सौंदर्य लाभ

पुष्प	उपयोग	लाभ
गुलाब	गुलाब जल, पाउडर, अर्क	त्वचा को शीतलता, नमी (मॉइस्चराइजिंग) एवं ताजगी प्रदान करता है
गेंदा	सूखा पाउडर, अर्क	त्वचा की सुरक्षा, सूजन कम करने तथा एंटीसेप्टिक गुण
अपराजिता	अर्क	एंटीऑक्सीडेंट एवं एंटी-एजिंग गुण, त्वचा की चमक बनाए रखने में सहायक
चमेली	आवश्यक तेल	प्राकृतिक सुगंध, त्वचा को पोषण तथा मानसिक शांति प्रदान करने वाला
लैवेंडर	तेल, अर्क	त्वचा को शांत करने, जलन कम करने तथा रिलैक्सिंग प्रभाव प्रदान करने वाला

सितम्बर-अक्तूबर के मुख्य बागवानी कार्य

हरे कृष्ण, अनूप प्रताप सिंह, राघवेंद्र प्रताप सिंह, विनय कुमार पटेल और **शेखर सिंह**

शरद ऋतु को परिवर्तन, संतुलन और प्राकृतिक सौंदर्य की ऋतु माना जाता है। भारतीय पारंपरिक पंचांग के अनुसार शरद ऋतु मुख्यत: अश्विन एवं कार्तिक मास में पड़ती है, जो सामान्यत: सितंबर से अक्तूबर के मध्य की अवधि होती है। बागवानी की दृष्टि से यह समय अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि विभिन्न खरीफ फसलों की कटाई तथा विभिन्न बागवानी फसलों की तुड़ाई इसी अवधि में संपन्न होती है। इसलिए इसे कटाई अथवा तुड़ाई की ऋतु भी कहा जाता है। इस काल में मनाए जाने वाले ओणम (केरल), नुआखाई (ओडिशा) तथा छठ पूजा (बिहार एवं पूर्वी भारत) जैसे पर्व नई कृषि उपज के प्रति कृतज्ञता, प्रकृति के प्रति सम्मान तथा सामाजिक समरसता के प्रतीक हैं। ये पर्व भारतीय कृषि परंपरा और प्रकृति के साथ मानव के घनिष्ठ संबंध को भी प्रतिबिंबित करते हैं। शरद ऋतु के दौरान दिन की अवधि तथा तापमान में होने वाले परिवर्तन पौधों की अनेक शारीरिक एवं जैव रासायनिक प्रक्रियाओं को प्रभावित करते हैं। समशीतोष्ण फल वृक्षों में क्लोरोफिल का अपघटन होने लगता है, जिससे कैरोटिनॉइड एवं एन्थोसाइनिन जैसे रंगद्रव्य स्पष्ट दिखाई देने लगते हैं और पत्तियाँ पीले, नारंगी अथवा लाल रंग धारण कर लेती हैं। दूसरी ओर, उष्णकटिबंधीय एवं उपोष्णकटिबंधीय फल वृक्षों में यद्यपि पर्णपात सामान्यत: नहीं होता, फिर भी इस अवधि में प्रकाश-संश्लेषण, वृद्धि तथा पोषक तत्वों के पुनर्वितरण जैसी महत्वपूर्ण प्रक्रियाएँ सक्रिय रहती हैं, जो आगामी वृद्धि एवं फलन की आधारशिला तैयार करती हैं।

फलदार वृक्षों की दृष्टि से शरद ऋतु अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जाती है। इस समय पौधों की जड़ें अपेक्षाकृत सक्रिय रहती हैं और वृक्ष कार्बोहाइड्रेट, शर्करा, अमीनो अम्ल तथा आवश्यक पोषक तत्वों का संचय जड़ों, तनों और कलिकाओं में करने लगते हैं। यही संचित भंडार शीत ऋतु में वृक्षों की जीवन क्रियाओं को बनाए रखने के साथ वसंत ऋतु में नई कोपलों, पुष्पों और फलों के विकास के लिए ऊर्जा एवं पोषण का प्रमुख स्रोत बनता है। अनेक फल फसलों में इसी अवधि के दौरान पुष्प कलिकाओं का विभेदन तथा अगले उत्पादन चक्र की तैयारी भी होने लगती है। इसलिए इस समय संतुलित पोषण, उचित जल प्रबंधन और प्रभावी पौध संरक्षण का अगले मौसम की उपज एवं फल गुणवत्ता पर सीधा प्रभाव पड़ता है।

भाकृअनुप-भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान, वाराणसी, उत्तर प्रदेश-221 305

बागवानी की दृष्टि से सितम्बर-अक्तूबर का समय फलोद्यानों में विभिन्न अंत:कर्षण क्रियाओं के लिए विशेष रूप से उपयुक्त होता है। वर्षा ऋतु के बाद बाग की स्वच्छता, खरपतवार नियंत्रण, हल्की गुड़ाई, समुचित जल निकास, जैविक एवं रासायनिक उर्वरकों का संतुलित उपयोग, सूखी एवं रोगग्रस्त शाखाओं का निष्कासन तथा कीट एवं रोगों की नियमित निगरानी आवश्यक है। आवश्यकता के अनुसार समेकित कीट एवं रोग प्रबंधन अपनाने से वृक्ष स्वस्थ रहते हैं, पोषक तत्वों का बेहतर उपयोग होता है और आगामी पुष्पण एवं फलन के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ बनती हैं। शरद ऋतु में की जाने वाली इन प्रमुख अंत:कर्षण क्रियाओं का क्रमवार विवरण आगे प्रस्तुत है।

आम

शरद ऋतु की इस द्विमाही में आम के बागों में रिक्त स्थानों की पूर्ति का कार्य पूरा कर लेना चाहिए। सितंबर में हरी खाद के लिए बोई गई फसल की जुताई कर उसे मृदा में पलट दें, ताकि वह अच्छी तरह विघटित होकर जैविक पदार्थ के रूप में भूमि की

आम रोग निदान

गुच्छा रोग के लक्षण दिखाई देने पर प्रभावित भागों को काटकर नेफ्थेलीन एसिटिक अम्ल 200 पीपीएम का छिड़काव करें। इस अवधि में प्रोहमरण के लक्षण भी दिखाई दे सकते हैं। ऐसी स्थिति में सूखी शाखाओं को स्वस्थ हरे भाग से 5-10 सें.मी. नीचे तक काटकर नष्ट कर दें तथा कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.3 प्रतिशत) का 15 दिनों के अंतराल पर दो बार छिड़काव करें। यही उपचार फोमा ब्लाइट (झुलसा रोग) के प्रबंधन में भी प्रभावी है। जिंक की कमी के लक्षण दिखाई देने पर 0.4 प्रतिशत जिंक सल्फेट का पर्णीय छिड़काव करें।

उर्वरता और संरचना में सुधार कर सके।

सितंबर में आम के वृक्षों में गोंदार्ति रोग की रोकथाम के लिए 10 वर्ष अथवा उससे अधिक आयु के प्रति वृक्ष 50 ग्राम जिंक सल्फेट, 250 ग्राम कॉपर सल्फेट, 125 ग्राम बोरेक्स तथा 100 ग्राम बुझा हुआ चूना मृदा में मिलाएँ। वर्षा न होने की स्थिति में इनके प्रभावी अवशोषण के लिए हल्की सिंचाई करें। इसी माह श्यामव्रण (एन्थ्रेक्नोज) और लाल रतुआ (रेड रस्ट) रोग की रोकथाम के लिए कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 3 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें। प्ररोह शोथ कीट का प्रकोप दिखाई देने पर थायोमेथोक्सम 1 ग्राम अथवा प्रोफेनोफोस 2 मि.ली. प्रति लीटर पानी के साथ 1-2 मि.ली. स्टिकर प्रति लीटर पानी मिलाकर छिड़काव करें।

अक्तूबर में वृक्षों के चारों ओर की भूमि की अच्छी तरह सफाई कर खरपतवार निकाल दें। आवश्यकता के अनुसार हल्की सिंचाई करें तथा वर्षा जल की निकासी के लिए उचित नालियों की व्यवस्था सुनिश्चित करें। रोगग्रस्त, कीटग्रस्त, सूखी और कमजोर शाखाओं की छंटाई करने के बाद ब्लाइटॉक्स 50 (3 ग्राम प्रति लीटर पानी) का छिड़काव लाभकारी होता है।

केले की स्वस्थ उपज

आम के वृक्षों में पुष्पण को नियमित एवं नियंत्रित करने के लिए अक्तूबर में पैक्लोब्यूट्राजोल (कल्टार) का प्रयोग 4-5 मि.ली. प्रति मीटर वृक्ष-छत्रक व्यास की दर से ड्रिप लाइन के साथ बनाए गए खाँचों में करें। इसी माह प्रति वृक्ष 50 कि.ग्रा. अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद, 500 ग्राम नाइट्रोजन, 250 ग्राम फॉस्फोरस तथा 500 ग्राम पोटाश देने से वृक्षों को आवश्यक पोषण मिलता है और आगामी पुष्पण एवं फलन के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ बनती हैं।

केला

यदि मानसून के दौरान नए बागों की स्थापना का कार्य पूरा नहीं हो सका हो, तो इसे सितंबर-अक्तूबर में पूरा कर लेना चाहिए। रोपण के लिए लगभग 1.5-2.0 कि. ग्रा. भार वाले स्वस्थ, तलवार के आकार के अंत:भूस्तारी (प्रकंद) का चयन करें, क्योंकि इनसे विकसित पौधों से अच्छी गुणवत्ता के फल प्राप्त होते हैं। जहाँ आवश्यक हो, वहाँ सड़े या अंकुरित प्रकंदों को हटाकर रिक्त स्थानों की पूर्ति करें। रोपण से पूर्व प्रकंदों की जड़ों और सड़े हुए भागों को काट दें तथा कंद से लगभग 20 सें.मी. ऊपर छद्म तने (स्यूडोस्टेम) को हटा दें।

रास्थली, मोनथन, विरुपाक्षी तथा अन्य म्लानि-संवेदनशील किस्मों में विल्ट रोग से बचाव के लिए प्रकंदों के संक्रमित भागों को छीलकर 0.2 प्रतिशत कार्बेन्डाजिम के घोल में 15-20 मिनट तक डुबोएँ। सूत्रकृमियों से बचाव के लिए प्रकंदों को 40 ग्राम कार्बोफ्यूरॉन 3जी कणिकाओं से उपचारित किया जा सकता है। इसके लिए प्रकंदों को 4 भाग मृदा और 5 भाग पानी से तैयार घोल में डुबोकर उन पर कार्बोफ्यूरॉन का प्रयोग करें। वैकल्पिक रूप से प्रकंदों को दो सप्ताह तक धूप में खुला रखें अथवा 55 डिग्री सेल्सियस तापमान वाले गर्म पानी में 10 मिनट तक डुबोएँ।

जैविक प्रबंधन के लिए अंत:भूस्तारी की छंटाई कर प्रत्येक अंत:भूस्तारी को स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस 20 ग्राम की दर से उपचारित करें। इसके बाद मृदा में स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस 2.5

डाली पर लदे आम

कि.ग्रा. प्रति हैक्टर के साथ 50 कि.ग्रा. गोबर की खाद मिलाएँ। बाग में सनई अथवा गेंदा की अंत:सस्य खेती भी सूत्रकृमियों की संख्या को नियंत्रित करने में सहायक होती है।

वर्तमान में ऊतक संवर्धित पौधे रोगमुक्त होने और अधिक उपज क्षमता के कारण तेजी से लोकप्रिय हो रहे हैं। रोपण के लिए लगभग 25-30 सें.मी. ऊँचाई वाले स्वस्थ ऊतक संवर्धित पौधों का चयन करें। इनमें 5-6 पूर्ण विकसित पत्तियाँ होनी चाहिए तथा किसी प्रकार की विकृति या पीली धारियाँ दिखाई नहीं देनी चाहिए। इस अवधि में दक्षिण भारत के क्षेत्रों में केले के बागों में खीरा और चौलाई की अंत:सस्य खेती भी की जा सकती है।

सितम्बर में परिपक्व फल गुच्छों की कटाई कर उन्हें पकाने एवं बाजार भेजने की समुचित व्यवस्था करें। इसी माह प्रति पौधा 55 ग्राम यूरिया पौधे से लगभग 50 सें.मी. की दूरी पर घेरे में डालकर हल्की गुड़ाई के साथ मृदा में मिला दें। अक्तूबर में अवांछित एवं सूखी पत्तियों को हटाकर बाग की सफाई करें तथा आवश्यकतानुसार हल्की सिंचाई करें। तैयार फल गुच्छों की समय पर कटाई कर बाजार भेजें।

पपीता

अक्तूबर पपीते की रोपाई के लिए अत्यंत उपयुक्त समय है। इस अवधि में बीज अथवा ऊतक संवर्धन से तैयार स्वस्थ पौधों को 45 × 45 × 45 सें.मी. आकार के पूर्व-तैयार गड्ढों में 1.8 × 1.8 मीटर की दूरी पर लगाएँ। रोपाई के तुरंत बाद हल्की सिंचाई करें तथा पौधों के अच्छी तरह स्थापित होने तक 2-3 दिनों के अंतराल पर आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहें।

नर एवं मादा पौधे अलग-अलग होने वाली (डायोशियस) किस्मों, जैसे पूसा ड्वार्फ, पूसा जायंट, पूसा नन्हा, पंत पपीता तथा कोयंबटूर-1, 2 एवं 7 में प्रत्येक गड्ढे में लगभग 15 सें.मी. की दूरी पर तीन पौधे लगाएँ। वहीं, उभयलिंगी किस्मों, जैसे पूसा डिलिशियस, पूसा मेजेस्टी और कुर्ग हनीड्यू में प्रत्येक गड्ढे में एक पौधा लगाना पर्याप्त है। विदेशी किस्मों में सोलो, सनराइज, सिंटा और रेड लेडी प्रमुख हैं। रेड लेडी अधिक उपज देने वाली संकर किस्म है और अनुकूल परिस्थितियों एवं उचित प्रबंधन में इससे प्रति पौधा लगभग 100 कि.ग्रा. तक फल उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

पौधों को तना एवं जड़ सड़न से बचाने के लिए खेत में जल निकास की समुचित व्यवस्था रखें तथा आवश्यकता होने पर 2.5 प्रतिशत बोर्डो मिश्रण का छिड़काव करें। सितंबर में मिलीबग का प्रकोप दिखाई देने पर जैविक नियंत्रण के लिए एसेरोफेगस पपायी परजीवी को प्रति प्रभावित पौधा 25-50 की संख्या में छोड़ें।

अमरूद

पुराने अमरूद के बागों में फलों की तुड़ाई के बाद पोषण प्रबंधन पर विशेष ध्यान देना चाहिए। इस समय फलदार वृक्षों में प्रति वृक्ष 25 कि.ग्रा. अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद के साथ 500 ग्राम नाइट्रोजन, 500 ग्राम फॉस्फोरस तथा 500 ग्राम पोटाश का प्रयोग करें। उपज एवं फल गुणवत्ता में सुधार के लिए 1 प्रतिशत यूरिया और 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट का पर्णीय छिड़काव भी लाभकारी होता है।

इस अवधि में फलों की थैलाबंदी एक सरल, कम लागत वाली एवं प्रभावी तकनीक है, जिसे किसान आसानी से अपना सकते हैं। बेहतर फल गुणवत्ता, आकर्षक रंग और समान रूप से पकने के लिए तुड़ाई से लगभग एक माह पूर्व अथवा फल लगने के 30-50 दिनों बाद, जब फल लगभग 1.5-2 इंच आकार के हो जाएँ, तब अखबार के कागज से उनकी थैलाबंदी करें। इससे फलों को फल मक्खी, पक्षियों, बाहरी क्षति और विभिन्न रोगों से बचाने में सहायता मिलती है।

स्टूलिंग, इनार्चिंग अथवा गूटी विधि से तैयार पौधों को इस समय पौधशाला में स्थापित किया जा सकता है। सघन बागवानी में वृक्षों को बौना और सुव्यवस्थित बनाए रखने के लिए नियमित छंटाई आवश्यक है। यह सामान्यतः मई-जून, सितम्बर-अक्तूबर तथा

अंगूर

महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश और कर्नाटक में अंगूर की फलन छंटाई का कार्य 15 अक्तूबर तक पूरा कर लेना चाहिए। छंटाई के समय परिपक्व प्ररोहों को उप-प्ररोहों की गाँठ (नोड) के बाद अथवा सीधे प्ररोहों पर 6-7 कलिकाएँ छोड़ते हुए काटें। फलों की तुड़ाई के बाद बेलों में संतुलित मात्रा में खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग करें, ताकि पौधों में पोषक तत्वों की पर्याप्त उपलब्धता बनी रहे और आगामी वृद्धि एवं फलन के लिए बेलें स्वस्थ रहें। सितंबर में श्यामव्रण (एन्थ्रेक्नोज) रोग की रोकथाम के लिए बाविस्टिन (0.2 प्रतिशत) का छिड़काव करें। इस द्विमाही में एचपी ग्रेड खनिज तेल का छिड़काव भी लाभकारी होता है। रतुआ, चूर्णिल आसिता और मृदुल आसिता के प्रभावी प्रबंधन के लिए खनिज तेल के साथ कॉपर ऑक्सीक्लोराइड अथवा बोर्डो मिश्रण का प्रयोग किया जा सकता है। अक्तूबर में अंगूर के बाग की अच्छी तरह सफाई कर उसे खरपतवार मुक्त रखें। आवश्यकतानुसार हल्की सिंचाई करें तथा इसके बाद निराई-गुड़ाई करें। इससे मृदा में उचित वायु संचार बना रहता है और खरपतवारों का प्रभावी नियंत्रण होता है।

केले में भृंग प्रबंधन

भृंग के प्रबंधन के लिए मेनमा जैवनाशक का उपयोग किया जा सकता है। यह केंद्रीय कंद फसल अनुसंधान संस्थान, केरल द्वारा विकसित जैवनाशक है, जिसे कसावा की पत्तियों से प्राप्त सायनोग्लाइकोसाइड्स से तैयार किया गया है। इसका उपयोग भृंग की विभिन्न अवस्थाओं के प्रबंधन के लिए पौधे में इंजेक्शन द्वारा किया जाता है। इसके अतिरिक्त, प्रति पौधा 500 ग्राम नीम की खली अथवा 250 ग्राम अरंडी की खली तने के चारों ओर मृदा में मिलाएँ। कोस्मोल्युर फेरोमोन प्रपंच 5 प्रति हैक्टर की दर से लगाना भी भृंग प्रबंधन में उपयोगी है। अधिक प्रकोप की स्थिति में क्लोरोपाइरीफॉस 2.5 मि.ली. प्रति लीटर पानी के साथ 1 मिली प्रति लीटर सहायक पदार्थ मिलाकर केले के तने पर प्रयोग करें। भृंग की निगरानी एवं नियंत्रण के लिए केले के तने से प्रपंच भी तैयार किए जा सकते हैं। इसके लिए तने को लगभग 30 सें.मी. लंबे टुकड़ों में काटकर लंबाई में दो भागों में विभाजित करें और कटे हुए भाग को नीचे की ओर मृदा से सटाकर रखें। ऐसे प्रपंच 100 प्रति हैक्टर की दर से लगाएँ। कटे हुए तने से निकलने वाले वाष्पशील पदार्थ तना एवं कंद भृंग को आकर्षित करते हैं। प्रपंचों में एकत्रित भृंगों को प्रतिदिन एकत्र कर नष्ट करें। अधिक प्रभावी जैविक नियंत्रण के लिए प्रपंचों पर ब्यूवेरिया बैसियाना (20 ग्राम चावल भूसी आधारित फॉर्मुलेशन अथवा 3 मि.ली. द्रव फॉर्मुलेशन प्रति 100 मि.ली. पानी) या हेटेरोरैब्डाइटिस इंडिका (15 मि.ली., 1 × 10 संक्रामक अल्पवयस्क प्रति मि.ली.) का प्रयोग किया जा सकता है। प्रपंचों के संपर्क में आने वाले भृंग इन जैव-कारकों से संक्रमित होकर मर जाते हैं। मेटाराइजियम माजुस का थायोमेथोक्सम (0.01 प्रतिशत) और कार्टैप हाइड्रोक्लोराइड (0.03 प्रतिशत) के साथ प्रयोग भी भृंग प्रबंधन में किया जा सकता है। जिन क्षेत्रों में भृंग का प्रकोप अधिक हो, वहाँ रोबस्टा, कर्पूरवल्ली, मालभोग, चम्पा और अडुक्कर जैसी अधिक संवेदनशील किस्मों की खेती से बचें। इनके स्थान पर पूवन, कदली, कुन्नन और पूमकल्लि जैसी अपेक्षाकृत कम संवेदनशील किस्मों को प्राथमिकता दें।

उन्नत तकनीक-भरपूर उत्पादन

जनवरी-फरवरी में की जाती है। सामान्य बागों में भी पिछली ऋतु में विकसित प्ररोहों को 10-15 सें.मी. तक काटना लाभकारी रहता है।

श्यामव्रण (एन्थ्रेक्नोज) रोग की रोकथाम के लिए सितंबर में 7-10 दिन के अंतराल पर बोर्डो मिश्रण (3:3:50) अथवा कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 2 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें। फाइटोफ्थोरा जनित फल गलन के लक्षण दिखाई देने पर रिडोमिल (0.2 प्रतिशत) अथवा कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.3 प्रतिशत) का छिड़काव करें। तना भेदक का प्रकोप होने पर छिद्रों को साफ कर उनमें पेट्रोल में भीगी रूई भरें और छिद्रों को चिकनी मृदा से बंद कर दें।

बोरॉन की कमी के लक्षण, जैसे पत्तियों का छोटा होना, फलों का कठोर होना अथवा फल फटना दिखाई देने पर पुष्पण एवं फल-स्थापन की अवस्था में 0.3 प्रतिशत बोरेक्स का पर्णीय छिड़काव करें। अक्तूबर में पके हुए फलों की समय पर तुड़ाई कर उनके विपणन की समुचित व्यवस्था करें। साथ ही, खरपतवारों को हटाकर बाग की नियमित सफाई बनाए रखें, जिससे वृक्ष स्वस्थ रहें तथा रोग एवं कीटों का प्रकोप कम हो।

लीची

यदि अगस्त में लीची के पौधों का रोपण पूरा नहीं हो पाया हो, तो सितंबर में यह कार्य अवश्य पूरा कर लें। गूटी विधि से तैयार पौधों को भी इस माह मातृ वृक्ष से अलग कर पौधशाला में स्थानांतरित करें। पौधों की पत्तियाँ कांस्य रंग की दिखाई देने पर प्रति पौधा 25 ग्राम जिंक सल्फेट मृदा में मिलाएँ। जिंक की कमी के लक्षण होने पर 0.4 प्रतिशत जिंक सल्फेट का पर्णीय छिड़काव भी किया जा सकता है।

सितम्बर-अक्तूबर लीची के बागों में खाद एवं उर्वरक प्रबंधन के लिए उपयुक्त समय है। एक वर्ष आयु के पौधे में 5 कि.ग्रा. गोबर की खाद अथवा कंपोस्ट, 50 ग्राम नाइट्रोजन, 25 ग्राम फॉस्फेट और 50 ग्राम पोटाश दें। पौधे की आयु के साथ इनकी मात्रा क्रमशः बढ़ाएँ। 10 वर्ष अथवा उससे अधिक आयु के वृक्ष में प्रति वर्ष 50 कि.ग्रा. गोबर की खाद, 500 ग्राम नाइट्रोजन, 250 ग्राम फॉस्फेट और 500 ग्राम पोटाश का प्रयोग करें। इस अवधि में बाग की हल्की जुताई करने से खरपतवारों का नियंत्रण होने के साथ मृदा में उचित वातन भी बना रहता है।

पुराने बागों में तना छेदक कीट की समस्या प्रायः देखी जाती है। इसके प्रबंधन के लिए अमरूद में बताई गई विधि अपनाई जा सकती है। सितंबर में पत्तियाँ खाने वाले भृंग के प्रबंधन के लिए बुप्रोफेजीन 1.5 मि.ली. प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें। अक्तूबर में छाल खाने वाली इल्लियों के नियंत्रण के लिए क्लोरोपायरीफॉस 2 मि.ली. प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें।

लीची के पौधों में तांबे की कमी के लक्षण, जैसे पत्तियों का असामान्य रूप से छोटा होना, दिखाई देने पर अक्तूबर में कॉपर सल्फेट 2 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से 15 दिनों के अंतराल पर दो बार छिड़काव करें।

पुष्पण को प्रेरित करने के लिए अक्तूबर से दिसंबर के बीच एथरेल 150 पीपीएम का 3-4 बार छिड़काव किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, सितंबर के प्रथम पखवाड़े में लीची के प्राथमिक प्ररोहों पर 2-4 मि.मी. चौड़ा वलयन बनाना भी पुष्प प्रेरण में सहायक होता है।

अनार

सितंबर-अक्तूबर के दौरान हस्त बहार की फसल में पुष्पण प्रारंभ हो जाता है। पुष्पण की प्रारंभिक अवस्था में 0.25 प्रतिशत जिंक सल्फेट, आयरन सल्फेट एवं मैंग्नीज सल्फेट के साथ 0.2 प्रतिशत बोरॉन का पर्णीय छिड़काव करने से उत्पादकता एवं फल गुणवत्ता में सुधार होता है तथा फल फटने की समस्या भी कम होती है।

छह वर्ष अथवा उससे अधिक आयु के पौधों में इस अवधि के दौरान खाद एवं उर्वरकों की तीसरी मात्रा के रूप में प्रति पौधा 10 कि.ग्रा. अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद, 200 ग्राम नाइट्रोजन, 125 ग्राम फॉस्फोरस तथा 400 ग्राम पोटाश का प्रयोग करें। मृदा के प्रकार, पौधों की आयु, वृद्धि अवस्था और मौसम के अनुसार सिंचाई करें। सामान्यतः ड्रिप सिंचाई द्वारा लगभग 20 लीटर पानी प्रति पौधा दिया जा सकता है। सितंबर-अक्तूबर में खरपतवारों तथा जड़ों से निकलने वाले अवांछित प्ररोहों को नियमित रूप से हटाते रहें, ताकि पौधों की वृद्धि एवं पोषण प्रभावित न हो।

बैक्टीरियल ब्लाइट तथा अन्य कवकजनित रोगों के प्रबंधन के लिए स्ट्रेप्टोसाइक्लिन 0.5 ग्राम और मैंकोजेब 75 डब्ल्यूपी 2 ग्राम प्रति लीटर पानी के साथ टीपोल अथवा ट्वीन-20 (0.5 मिली प्रति लीटर पानी) मिलाकर छिड़काव करें। इस अवधि में थ्रिप्स (तैला कीट) का प्रकोप भी अधिक हो सकता है। इसके प्रबंधन के लिए पुष्पण अवस्था में फिप्रोनिल, इमिडाक्लोप्रिड अथवा लैम्ब्डा-सायहेलोथ्रिन का अनुशंसित मात्रा में छिड़काव करें।

अक्तूबर में फल बेधक एवं फल चूसक कीटों का प्रकोप बढ़ सकता है। इनके प्रबंधन के लिए फलों की थैलाबंदी तथा पौधों को कीटरोधी जाल से ढकना प्रभावी उपाय है। आवश्यकता होने पर लैम्ब्डा-सायहेलोथ्रिन, सायपरमेथ्रिन, इंडोक्साकार्ब अथवा प्रोफेनोफॉस का अनुशंसित मात्रा एवं अंतराल पर छिड़काव करें। इसके अतिरिक्त, स्पिनोसैड, क्लोरान्ट्रानिलिप्रोल तथा फ्लूबेन्डामाइड का प्रयोग भी फल बेधक कीटों के प्रबंधन में किया जा सकता है।

कटहल

अक्तूबर में तैयार फलों की समय पर तुड़ाई कर इन्हें बाजार भेजने की समुचित व्यवस्था करें। इसी माह पके फलों से स्वस्थ एवं पूर्ण विकसित बीज निकालकर पौधशाला में इनकी बुआई करें। चूर्णिल आसिता रोग का प्रकोप दिखाई देने पर डाइथेन एम-45 का 2 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें। मिलीबग के प्रबंधन के लिए वृक्ष के तने पर आम में अपनाई जाने वाली विधि के अनुसार पॉलीथीन की पट्टी बाँधें, जिससे कीटों को तने के सहारे ऊपर चढ़ने से रोका जा सके।

आंवला

यदि नए आंवले के बाग अगस्त के अंत तक स्थापित नहीं किए जा सके हों, तो सितंबर के प्रथम सप्ताह में रोपण कार्य पूरा कर लें। सितंबर में फल सड़न रोग की

रोकथाम के लिए ब्लाइटॉक्स 3 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें। शुष्क विगलन (आंतरिक ऊतक परिगलन) रोग में अक्तूबर-नवंबर के दौरान फल अंदर से काले पड़ने लगते हैं और समय से पहले गिर सकते हैं। इसके प्रबंधन के लिए बोरेक्स 6 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से 15 दिनों के अंतराल पर दो बार छिड़काव करें।

शूट गॉल से प्रभावित टहनियों को काटकर नष्ट कर दें। छाल खाने वाले कीट के प्रबंधन के लिए कीट द्वारा बनाए गए छिद्रों को साफ कर उनमें मृदा के तेल अथवा पेट्रोल में भीगी रूई तार की सहायता से डालें और छिद्रों को चिकनी मृदा से बंद कर दें।

अक्तूबर में सिंचाई के लिए उचित नालियों की व्यवस्था करें तथा आवश्यकता के अनुसार लगभग 20 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करें, जिससे फलों का समुचित विकास हो सके। इस अवधि में तना छेदक कीट का प्रकोप भी हो सकता है। इसके प्रबंधन के लिए 5 प्रतिशत नीम की गिरी के अर्क अथवा क्विनालफॉस (0.05 प्रतिशत) का छिड़काव करें।

इस अवधि में खाद एवं उर्वरक प्रबंधन पर भी विशेष ध्यान दें। लगभग 10 वर्ष पुराने फलदार वृक्ष में प्रतिवर्ष 800 ग्राम नाइट्रोजन, 1 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फॉस्फेट तथा 1.0-1.5 कि.ग्रा. पोटाश देने की अनुशंसा की जाती है। इनमें से आधी मात्रा अक्तूबर में दें। इसके अतिरिक्त, प्रति वृक्ष 30-40 कि.ग्रा. अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद का प्रयोग करें। छोटे पौधों के लिए 15-20 कि.ग्रा. प्रति वृक्ष गोबर की खाद पर्याप्त होती है।

लोकाट

नए लोकाट के बागों की स्थापना का कार्य सितंबर में अवश्य पूरा कर लें। इस अवधि में पुराने बागों में पुष्पण प्रारंभ हो जाता है। अत: पुष्पण के दौरान कीटनाशकों के प्रयोग से बचें, क्योंकि इनका प्रतिकूल प्रभाव मधुमक्खियों एवं अन्य परागणकर्ताओं पर पड़ सकता है। परागणकर्ताओं की सक्रियता प्रभावित होने से परागण कम हो सकता है, जिसका सीधा प्रभाव फल स्थापन एवं उत्पादन पर पड़ता है।

गोल्डन येलो और पेल येलो जैसी किस्मों में बेहतर परागण एवं फल स्थापन के लिए बाग में कैलिफोर्निया एडवांस किस्म को परागणकर्ता किस्म के रूप में लगाएँ, क्योंकि इन किस्मों में स्वपरागण की क्षमता नहीं होती है।

लोकाट में पुष्पण

अनन्नास

सितंबर में अनन्नास के रोग एवं कीटग्रस्त पौधों तथा उनके प्रभावित भागों को एकत्र कर नष्ट कर दें। बाग से खरपतवार हटाएँ और पौधों के चारों ओर पलवार बिछाएँ, जिससे मृदा में पर्याप्त नमी बनी रहे और खरपतवारों का प्रभावी नियंत्रण हो सके। बाग में उपलब्ध खाली स्थान का उपयोग उपयुक्त सब्जियों की अंत:सस्य खेती के लिए किया जा सकता है, जिससे अतिरिक्त आय प्राप्त की जा सकती है।

फलों को बाहरी क्षति एवं तेज धूप से बचाने के लिए थैलाबंदी करना लाभकारी होता है। धूप से झुलसी एवं भूमि पर गिरी पत्तियों तथा क्षतिग्रस्त फलों को एकत्र कर नष्ट कर दें। यदि अगस्त में नाइट्रोजन और पोटाश की दूसरी मात्रा नहीं दी गई हो, तो इसे सितंबर में अवश्य दें। कीट प्रबंधन के लिए 2 प्रतिशत नीम तेल का छिड़काव किया जा सकता है।

अक्तूबर में फसल अवशेषों को खेत से निकालकर नष्ट कर दें। अत्यधिक वर्षा की स्थिति में नए पौधों का रोपण करने से बचें और खेत से अतिरिक्त जल की निकासी की समुचित व्यवस्था करें। मृदा के प्रकार एवं स्थिति, पौधों की आयु एवं वृद्धि अवस्था तथा मौसम के अनुसार सिंचाई करें। बाग की सीमाओं पर ऐसी फसलों को प्राथमिकता दें जिनमें कीट एवं रोगों का प्रकोप अपेक्षाकृत कम होता है।

चीकू

सितम्बर में दीमक के प्रकोप से बचाव के लिए क्लोरोपाइरीफॉस 2 मि.ली. प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें। बाग को खरपतवार मुक्त रखें तथा भूमि के नीचे और मुख्य शाखाओं के निचले भाग से निकलने वाले अवांछित प्ररोहों को नियमित रूप से हटाते रहें। अक्तूबर में बाग में मृत पौधों के स्थान पर स्वस्थ नए पौधे लगाकर रिक्त स्थानों की पूर्ति करें। मूलवृंत से निकलने वाले प्ररोहों को भी हटा दें। बाग में उपलब्ध खाली स्थान का उपयोग सब्जियों की अंत:सस्य खेती के लिए किया जा सकता है, जिससे किसानों को अतिरिक्त आय प्राप्त हो सकती है। मृदा के प्रकार एवं स्थिति, पौधों की आयु एवं वृद्धि अवस्था तथा मौसम के अनुसार सिंचाई करें। पौधों की आयु के अनुसार फॉस्फोरस और पोटाश का प्रयोग करें। बाग में नियमित रूप से खरपतवार निकालें और साफ-सफाई बनाए रखें, जिससे कीट एवं रोगों का प्रकोप कम किया जा सके। मुख्य फसल की तुड़ाई के बाद पौधों पर विकसित होने वाले अवांछित फलों को हटा दें, ताकि पौधों के पोषक तत्वों का अनावश्यक व्यय न हो।

बेर

बाग की अच्छी तरह सफाई कर खरपतवार निकाल दें। अक्तूबर में बेर में चूर्णिल आसिता रोग के प्रकोप की आशंका रहती है। इसके प्रबंधन के लिए केराथेन 1 मि.ली. प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें। इसके अतिरिक्त, बाविस्टिन (0.05 प्रतिशत) अथवा सल्फर चूर्ण (0.2 प्रतिशत) का छिड़काव भी किया जा सकता है। बेर में सितंबर से पुष्पण प्रारंभ हो जाता है। इसके परागकण चिपचिपे होते हैं और परागण मुख्यत: मधुमक्खियों द्वारा होता है। अत: बेहतर परागण एवं फल-स्थापन सुनिश्चित करने के लिए बाग में प्रति एकड़ मधुमक्खियों के दो छत्ते रखें। इससे फल उत्पादन में सुधार के साथ किसानों को शहद से अतिरिक्त आय भी प्राप्त हो सकती है।

नीबूवर्गीय फल

अक्तूबर में नीबूवर्गीय फलों के बाग की एक बार हल्की जुताई करना लाभकारी होता है। इससे खरपतवार नियंत्रण के साथ मृदा में वायु संचार भी बेहतर होता है। इस माह कैंकर रोग के लक्षण दिखाई देने पर

स्ट्रेप्टोसाइक्लिन 500 पीपीएम का छिड़काव करें। पर्णसुरंगी कीट के प्रबंधन के लिए पौधशाला में इमिडाक्लोप्रिड, थायमेथोक्सम अथवा नीम तेल का अनुशंसित मात्रा में छिड़काव करें।

नीबूवर्गीय फलों में तुड़ाई से पहले फलों का गिरना एक गंभीर समस्या है। इसकी रोकथाम के लिए सितंबर में 2,4-डी 10 पीपीएम (1 ग्राम प्रति 100 लीटर पानी) की दर से छिड़काव करें। इसी माह पौधों को नाइट्रोजन की तीसरी मात्रा भी दें।

इन फल वृक्षों में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी प्राय: देखी जाती है। इसकी पूर्ति के लिए जिंक सल्फेट, मैग्नीशियम सल्फेट, बोरिक अम्ल तथा बुझा हुआ चूना, प्रत्येक 1 कि.ग्रा. प्रति 450 लीटर पानी की दर से मिलाकर पर्णीय छिड़काव करें। नाइट्रोजन की कमी की पूर्ति के लिए इस घोल में 5 कि. ग्रा. यूरिया भी मिलाया जा सकता है।

सेब

सितम्बर में रूईया एवं संजोस स्केल जैसे चूसक कीटों के जैविक प्रबंधन के लिए कोक्सिनेला सेप्टेमपंक्टाटा के 30-50 वयस्क प्रति प्रभावित वृक्ष की दर से बाग में छोड़ें। साथ ही प्रोस्पाल्टेला पर्निशियोसी तथा एस्पिडियोटोफैगस जैसे लाभकारी परजीवी कीटों का संरक्षण करें, जिससे इन कीटों का प्राकृतिक रूप से नियंत्रण हो सके। आवश्यकता होने पर सितंबर में ऑक्सीडेमेटोन-मिथाइल 25 ईसी (0.07 प्रतिशत) का छिड़काव करें। इन चूसक कीटों के प्रबंधन के लिए वसंत ऋतु

गुणकारी सेब

के प्रारंभ में 2 प्रतिशत हॉर्टिकल्चरल मिनरल ऑयल का छिड़काव भी प्रभावी होता है।

तुड़ाई से पहले फलों के गिरने की समस्या को कम करने के लिए अगस्त-सितम्बर में नेफ्थेलीन एसिटिक अम्ल (एनएए) 20 पीपीएम (2 ग्राम प्रति 100 लीटर पानी) की दर से छिड़काव करें। देर से पकने वाली किस्मों के तैयार फलों की समय पर तुड़ाई कर उनके विपणन की समुचित व्यवस्था करें।

अक्तूबर में बीजू पौधे तैयार करने के लिए स्वस्थ एवं पके फलों से बीज निकालकर पौधशाला में उनकी बुआई करें। तने पर रोग के लक्षण दिखाई देने पर ब्लाइटॉक्स-50 का अनुशंसित मात्रा में घोल बनाकर छिड़काव करें।

नाशपाती, आड़ू, खुबानी एवं आलूबुखारा

सितंबर-अक्तूबर के दौरान आड़ू, खुबानी और आलूबुखारा के पौधों के तनों पर नीला थोथा (कॉपर सल्फेट) का लेप करें। गोंदार्ति रोग की रोकथाम के लिए 0.4 प्रतिशत बोरेक्स का छिड़काव करें। अक्तूबर में बाग की नियमित सफाई कर उसे खरपतवारमुक्त रखें।

इस अवधि में जड़ छेदक कीट का प्रकोप दिखाई देने पर पौधों के चारों ओर क्लोरोपायरीफॉस चूर्ण का अनुशंसित मात्रा में प्रयोग करें। आड़ू में पत्ती मुड़न रोग के प्रबंधन के लिए संक्रमित पत्तियों को तोड़कर नष्ट कर दें। इसके बाद कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 300 ग्राम प्रति 100 लीटर पानी अथवा कार्बेन्डाजिम 50 ग्राम प्रति 100 लीटर पानी की दर से छिड़काव करें।

स्ट्रॉबेरी

मैदानी क्षेत्रों में सितंबर में खेत की अच्छी तरह जुताई कर 40-50 टन प्रति हैक्टर की दर से अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद मृदा में मिलाएँ। इसके बाद 10 × 3 × 0.5 फीट आकार की क्यारियाँ तैयार करें, ताकि अक्तूबर के अंतिम सप्ताह में पौधरोपण किया जा सके। खेत की समुचित तैयारी के बाद अक्तूबर के अंतिम सप्ताह से नवंबर के प्रारंभ तक स्वस्थ एवं गुणवत्तायुक्त स्ट्रॉबेरी पौधों की रोपाई करें।

स्वस्थ स्ट्रॉबेरी

इस प्रकार उपरोक्त शरद ऋतु में किए जाने वाले ये वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक बागवानी कार्य फलोद्यानों को स्वस्थ एवं उत्पादक बनाए रखने में उपयोगी सिद्ध होंगे। समय पर पोषण, सिंचाई, खरपतवार नियंत्रण, छंटाई तथा कीट एवं रोग प्रबंधन अपनाकर न केवल वृक्षों की बेहतर वृद्धि सुनिश्चित की जा सकती है, बल्कि आगामी पुष्पण एवं फलन के लिए भी अनुकूल परिस्थितियाँ तैयार की जा सकती हैं। आगामी शीत ऋतु (हेमंत एवं शिशिर) में भी फलोद्यानों में अनेक महत्वपूर्ण अंत:कर्षण एवं प्रबंधन कार्य किए जाते हैं। इनकी विस्तृत जानकारी **'फल-फूल'** के अगले अंक में प्रस्तुत की जाएगी। तब तक अपने फलोद्यानों की नियमित देखभाल करते रहें और वैज्ञानिक बागवानी तकनीकों को अपनाकर बेहतर उत्पादन एवं गुणवत्तापूर्ण उपज की दिशा में आगे बढ़ें। ■

खजूर

यदि किसी कारणवश जुलाई-अगस्त में खजूर के पौधों का रोपण पूरा नहीं हो पाया हो, तो सितम्बर में यह कार्य अवश्य पूरा कर लें। यह अवधि खाद एवं उर्वरकों के प्रयोग के लिए भी उपयुक्त होती है। साथ ही, सूखी, रोगग्रस्त और अवांछित पत्तियों की छंटाई कर बाग की साफ-सफाई बनाए रखें। बेहतर वृद्धि एवं उत्पादन के लिए अनावश्यक भूस्तारियों को काटकर अलग कर दें। यदि प्रवर्धन के लिए भूस्तारियों की संख्या बढ़ानी हो, तो छोटे भूस्तारियों के चारों ओर मृदा चढ़ाने का कार्य सितंबर में पूरा कर लें।

बेकार नहीं, बेशकीमती हैं आम की गुठलियां

आम खाने के बाद उसकी गुठलियों को अक्सर बेकार समझकर फेंक दिया जाता है, लेकिन अब यही गुठलियां किसानों की अतिरिक्त आय का नया स्रोत बन सकती हैं। बिहार कृषि विश्वविद्यालय (बीएयू), सबौर के वैज्ञानिकों ने आम की गुठलियों से बटर और तेल तैयार कर कृषि अपशिष्ट के मूल्य संवर्धन की दिशा में महत्वपूर्ण सफलता हासिल की है। यह उपलब्धि आम के संपूर्ण उपयोग की अवधारणा को मजबूत करने के साथ-साथ कृषि आधारित उद्योगों के लिए भी नई संभावनाओं के द्वार खोल रही है।

विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. दुनिया राम सिंह के मार्गदर्शन में हुए इस शोध के प्रथम चरण में उत्साहजनक परिणाम प्राप्त हुए हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार, गुठलियों से तैयार बटर का उपयोग खाद्य उत्पादों के साथ-साथ कॉस्मेटिक उद्योग में किया जा सकता है, जबकि तेल सौंदर्य प्रसाधनों और अन्य औद्योगिक उत्पादों के निर्माण में उपयोगी सिद्ध हो सकता है। यदि इस तकनीक का व्यावसायिक स्तर पर विस्तार होता है, तो आम प्रसंस्करण के दौरान निकलने वाले अपशिष्ट को मूल्यवान उत्पादों में बदला जा सकेगा।

बीएयू के वैज्ञानिक केवल बटर और तेल तक ही सीमित नहीं हैं। इन्हें आम की गुठलियों से हाइड्रोजेल विकसित करने में भी सफलता मिली है, जिसका उपयोग मृदा में नमी संरक्षण, जल उपयोग दक्षता बढ़ाने, पर्यावरण अनुकूल खाद्य पैकेजिंग तथा जैव चिकित्सीय क्षेत्रों में किया जा सकता है। इससे पहले विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक आम के छिलकों से नैनो सेल्यूलोज भी विकसित कर चुके हैं। इससे स्पष्ट होता है कि आम का लगभग प्रत्येक भाग उपयोगी उत्पादों में परिवर्तित किया जा सकता है।

वैज्ञानिकों के अनुसार, आम की गुठलियों में पर्याप्त मात्रा में स्टार्च और उपयोगी वसा पाया जाती है, जो इन्हें मूल्य संवर्धित उत्पादों के निर्माण के लिए उपयुक्त बनाते हैं। इस बटर के पोषक गुणों और व्यावसायिक उपयोगिता पर अभी और शोध जारी है।

यह उपलब्धि इस बात का उदाहरण है कि वैज्ञानिक नवाचार के माध्यम से कृषि अपशिष्ट को भी आर्थिक संसाधन में बदला जा सकता है। भविष्य में यदि यह तकनीक किसानों, एफपीओ, स्वयं सहायता समूहों और उद्यमियों तक पहुंचती है, तो आम उत्पादन से होने वाली आय में वृद्धि के साथ-साथ कृषि अपशिष्ट के प्रभावी प्रबंधन का मार्ग भी प्रशस्त होगा। ■

पहाड़ी क्षेत्रों में बढ़ रहा चाइनीज स्टेलेरा का संकट

उत्तराखंड के ऊंचाई वाले हिमालयी क्षेत्रों में पाया जाने वाला एक विषैला पौधा चाइनीज स्टेलेरा अब तेजी से फैल रहा है। हाल ही में पिथौरागढ़ जिले के दारमा और व्यास घाटी के पास स्थित छियालेख बुग्याल, जो आदि कैलाश क्षेत्र के निकट है, में पहली बार इसके फूलदार पौधे मिले हैं। वन विभाग की अनुसंधान शाखा के वैज्ञानिकों ने इसे गंभीर चिंता का विषय बताया है, क्योंकि यह पौधा हिमालयी बुग्यालों के लिए बड़ा संकट बन सकता है।

शोधकर्ताओं के अनुसार, इस क्षेत्र में पहली बार इसके फूलों से लदे पौधे देखे गए हैं। देखने में यह पौधा आकर्षक लगता है, लेकिन यह बेहद विषैला होता है। यदि कोई इंसान या मवेशी इसे खा ले, तो उसकी जान भी जा सकती है। इतना ही नहीं, इसके पत्तों को मसलकर सूंघने से बेहोशी भी आ सकती है।

विशेषज्ञों का कहना है कि चाइनीज स्टेलेरा अपने आसपास ऐसे विषैले रसायन छोड़ता है, जो घास और अन्य स्थानीय वनस्पतियों की वृद्धि रोक देते हैं। धीरे-धीरे आसपास की वनस्पतियां नष्ट होने लगती हैं और मृदा उर्वरता भी प्रभावित होती है। इससे बुग्याल बंजर होने का संकट बढ़ जाता है। हालांकि यह पौधा हरियाली तो बढ़ाता है, लेकिन मवेशी इसे चारे के रूप में नहीं खा सकते। इसलिए इसके फैलने से स्थानीय लोगों और पशुपालकों की आजीविका पर भी असर पड़ सकता है।

यह पौधा मुख्य रूप से चीन, तिब्बत और मंगोलिया में पाया जाता है। चीन में इसका उपयोग पारंपरिक दवाएं बनाने में भी किया जाता है। इसमें सूजन और दर्द कम करने, गठिया एवं जोड़ों के दर्द से राहत देने, त्वचा रोगों, खुजली और फंगल संक्रमण के उपचार, परजीवी एवं कीट नियंत्रण तथा कैंसर रोधी जैसे औषधीय गुण भी बताए जाते हैं। हालांकि इसके विषैले स्वभाव के कारण इसका उपयोग केवल विशेषज्ञों की देखरेख में ही किया जाना चाहिए। ■

ISSN 0971-2984 पंजी. सं. (क्यू)-437

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की लोकप्रिय मासिक हिंदी पत्रिका

खेती

- निरंतर 79 वर्षों से प्रकाशित आपकी अपनी लोकप्रिय हिंदी मासिक पत्रिका **खेती** में खेती-बाड़ी के आधुनिक तौर-तरीकों, पशुपालन की उन्नत विधियों, कृषि वानिकी, औषधीय पौधों की खेती तथा प्रगतिशील किसानों की सफलता गाथाओं से जुड़े अनुभवी कृषि वैज्ञानिकों के लेखों को अत्यंत सरल भाषा में प्रस्तुत किया जाता है। इस जानकारी का लाभ किसान भाई अपनी कृषि आय बढ़ाने के लिए उठा सकते हैं।
- संपूर्ण रंगीन पृष्ठों से सुसज्जित इस प्रतिष्ठित पत्रिका में **'अगले माह के कृषि कार्यकलाप'** तथा 'कृषि खबरें, देश विदेश की' जैसे अत्यंत उपयोगी नियमित स्तंभ भी हैं जो रोचक होने के साथ नई जानकारियां भी प्रदान करते हैं। यही नहीं विभिन्न किसानोपयोगी विषयों पर पत्रिका के विशेषांकों का भी समय-समय पर प्रकाशन किया जाता है।

पत्रिका मूल्यः

एक प्रति : 50 रुपये, वार्षिक सदस्यता शुल्क : 500 रुपये

संपर्क सूत्रः

प्रभारी, व्यवसाय एकक
कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि अनुसंधान भवन-1, पूसा गेट, नई दिल्ली-110012
दूरभाष : 011–25843657, ईमेल : businessuniticar@gmail.com

डा. अनुराधा अग्रवाल, परियोजना निदेशक, कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय द्वारा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के लिए प्रकाशित तथा मैसर्स विबा प्रेस प्रा. लि., सी-66/3, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेस-II, नई दिल्ली 110 020 से मुद्रित। संपादक: सुनीता अरोड़ा